॥ श्री ॥

विद्याभवन-संस्कृत-ग्रन्थमाला
४६

भासनाटकचक्रे

चारुदत्तम्

'प्रकाश' संस्कृत हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार —
साहित्यशास्त्राचार्य
श्री प० कपिलदेवगिरि



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
प्रथम संस्करण, संवत् २०१६
मूल्य २—५०

The Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk, Varanasi.
(INDIA)
1960

आत्म-निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक की व्याख्या करते समय छात्रबन्धुओं की समस्याओं को ध्यान में रखकर लक्ष्य गत जटिल शब्दों का समास विधि से ही अर्थ बोध कराने का प्रयास किया गया है। यथासम्भव भाषा को सरल और शैली को सुबोध बनाने की चेष्टा की गई है।

व्याख्या लिखने में जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है उनके लेखकों व प्रकाशकों का मैं परम कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त गुरुदेव श्री पं० महादेव शास्त्री (भूतपूर्व प्रधानाचार्य सं० महाविद्यालय का० हि० वि० वि०) श्री पं० कान्तानाथ जी शास्त्री तैलंग श्री पं० राममूर्ति त्रिपाठी जी जैसे महानुभावों से समय समय पर जो सक्रिय सहयोग मिला है उसके लिए आभारप्रदर्शन मात्र करना धृष्टता होगी। श्री तैलंगजी ने अपने अल्प परिचय में ही असीम प्रेरणाओं के साथ जिन तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री का ज्ञान कराया है वह उनके स्नेहमय आशी का प्रतीक है। बन्धुवर श्री शंकरदेव जी अवसर ने अपने व्यस्त समय में भी जिस सतर्कता के साथ हिन्दी पाण्डुलिपि को आद्यन्त पढ़ा उसके लिये उन्हें धन्यवाद देना उपचारमात्र होगा।

प्रकाशक महोदय जी को बहुशः धन्यवाद है जिनकी प्रेरणा एवं दी हुई सुविधा से इस व्याख्या की रचना की जा सकी है।

अन्त में निवेदन है कि सहृदय एवं विज्ञ पाठक अपने सत्परामर्श द्वारा लेखक को अनुगृहीत करेंगे।

फाल्गुनी पूर्णिमा
सं० २०१६

कपिलदेव गिरि

भूमिका

महाकवि भास

ख्याति—महाकवि भास संस्कृत साहित्य के प्रख्यात एवं सम्मानित महाकवियों में से हैं। कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार(१) के मुख से स्पष्ट ही प्रश्न करवाया है कि प्रसिद्ध यशवाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि महाकवियों के प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की कृति का इतना अधिक सम्मान क्यों हो रहा है? इस कथन से भलीभाँति प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में भास के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय थे। कालिदास के बाद के कवियों ने भी भास के नाटकों का अत्यन्त सम्मान किया है। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में इनके नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि भास ने सूत्रधार से आरम्भ किये गये, बहुत भूमिका वाले तथा पताका (रूपक की मुख्य अवान्तर घटना तथा ध्वजा) से शोभायमान देवकुलों की भाँति अपने नाटकों से साहित्य-जगत् में अच्छी प्रतिष्ठा पाई। (२) राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में भास के नाटकों की अग्नि-परीक्षा तथा 'स्वप्नवासवदत्तम्' को सर्वोत्तम नाटक स्वीकार किया है।(३)

वाक्पतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृतभाषा के महाकाव्य में 'जलणमित्ते'—ज्वलनमित्र (अग्नि का मित्र) बताया है(४)। प्रख्यात आलंकारिक जयदेव ने भास को 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में कविताकामिनी का हास माना है(५)।

(१) 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः'। (मालविकाग्निमित्रम्)

(२) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ (हर्षचरितम्)

(३) भासनाटकचक्रेऽस्मिन्च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥ (काव्यमीमांसा)

(४) भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुआरे।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारि अन्दे अ आणन्दो ॥ (गउडवहो)

(५) यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ (प्रसन्नराघव)

उपर्युक्त विवरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अतीत काल में सर्वसाधारण के बीच भास के रूपकों की अधिक ख्याति एवं प्रचार था और उनके बृहद् नाटक-चक्र में स्वप्नवासवदत्तम् प्रधान था।

संस्कृत साहित्य के एक विख्यात कवि होने पर भी बहुत दिनों तक विद्वानों के मध्य भास का केवल नाम ही सुना जाता था। इनके समय, ग्रन्थ तथा जीवनवृत्त के विषय में लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। केवल अनेक संस्कृत काव्यों और नाटकों में उनका नामोल्लेख एवं उद्धरण देखकर ही अनुमान किया जाता था कि अतीतकाल में भास नामक कोई प्रख्यात नाटककार हो गया है। ऐसी स्थिति अनेक काव्यों की है जिनका केवल नाममात्र ही श्रवणगोचर होता है जैसे कण्ठाभरण' 'जाम्बवतीविजय' आदि; परन्तु सहर्षसौभाग्य की बात है कि १९१२ ई० में ट्रावनकोर के प० श्री टी० गणपति शास्त्री ने स्वप्नवासवदत्तम् आदि तेरह नाटकों का अन्वेषण कर अनन्तशयनग्रन्थमाला में प्रकाशित कराया और उन्हें भास की असंदिग्ध कृति बतलाई। उसी समय से भास और उनके रूपकों की चर्चा साहित्य संसार एवं सहृदय विद्वानों में होने लगी। श्री शास्त्री जी द्वारा अनुसंधान किए गए तेरह नाटकों में केवल स्वप्नवासवदत्तम् भासकृत हो सकता है, क्योंकि राजशेखर के पूर्वोक्त निर्देश के अतिरिक्त आचार्य अभिनवगुप्त ने भी 'अभिनवभारती' में इस नाटक का उल्लेख किया है(१)। किन्तु शेष रूपकों को भास की रचना स्वीकार करने में कोई भी उत्कृष्ट प्रमाण नहीं है ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। किन्तु श्री शास्त्री जी ने इन रूपकों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये जो अकाट्य युक्तियाँ दी हैं उनमें शंका का लेशमात्र भी कारण नहीं है। प्रकरणानुसार इसकी चर्चा आगे की जायगी।

भास का समय

महाकवि कालिदास ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्र में भास का बड़े सम्मान से नामोल्लेख किया है जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है। इससे यह सिद्ध एवं सुस्पष्ट हो जाता है कि भास कालिदास से प्राचीन थे। कालिदास के समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग महाकवि का समय ४०० ई० बताते हैं। उनके कथनानुसार भास ४०० ई० से प्राचीन होते हैं। कुछ विद्वान् कालिदास की स्थिति प्रथम शतक निश्चित करते हैं। उनके आधार पर भास ईसा के प्रथम शतक से प्राचीन होते हैं। भास को इतना सम्मान्य होने में कि कालिदास जैसे महाकवि भी उनका नाम गौरव एवं प्रतिष्ठा से लें,

---

(१)

अवश्यमेव एक निश्चित समय लगा होगा। भास के १३ नाटकों के आविष्कारक एव आश्रयदाता श्री गणपति शास्त्री ने भास को पाणिनि और चाणक्य से भी प्राचीन बतलाने का प्रयत्न किया है। सैनिकों को लड़ाई के लिये प्रोत्साहित करने के प्रसङ्ग में चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ में 'अपीह श्लोको भवत' का उल्लेख कर जिन दो श्लोकों को प्रमाणकोटि में स्थापित किया है उनमें से एक(१) भास के प्राप्त 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' में उपलब्ध होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि उक्त श्लोक को चाणक्य ने भास के नाटक से लिया है। इतिहासकारों ने चाणक्य का समय ई० पू० ४०० निश्चित किया है। एतदर्थं भास ई० पू० ४०० से अर्वाचीन कदापि नहीं स्वीकार किए जा सकते।

भास के द्वारा रचित 'प्रतिमानाटक' में रावण के बृहस्पति(२)कृत अर्थशास्त्र में दक्षता प्राप्त करने का उल्लेख किया गया है। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से भी पहले का है। यदि वे कौटिल्य से बाद के होते तो बृहस्पतिरचित अर्थशास्त्र की जगह चाणक्यरचित अर्थशास्त्र का नामोल्लेख मिलता। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र यह निर्देश करता है कि भास चाणक्य से भी प्राचीन थे। प्रयोगों की अपाणिनीयता यह बतलाती है कि पाणिनि के सर्वसम्मानित पद पर प्रतिष्ठित होने के पूर्व इन नाटकों का निर्माण हुआ था। कालिदास के प्राकृतों की अपेक्षा भास के प्राकृत अतीव प्राचीन प्रतीत होते हैं। भास के रूपकों से प्रतिभासित होनेवाली सामाजिक दशा मौर्यकालीन सामाजिक दशा के अनुरूप है। उक्त प्रमाणों के आधार पर भास का समय कम से कम ई० पू० पाँचवीं शताब्दी निश्चित होता है किन्तु अधिकांश समीक्षक इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। वे भास तथा चाणक्य के पद्य को किसी दूसरे ग्रन्थ का सङ्कलन बतलाते हुए उक्त मत को अप्रामाणिक सिद्ध करते हैं।

प्राकृतभाषा की आलोचना के आधार पर डा० लेस्नी, सुखथनकर इत्यादि पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानों ने भास को कालिदास से तो प्राचीन बतलाया है, पर अश्वघोष से अर्वाचीन। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि अश्वघोष की प्राकृत की छाया भास के रूपकों में पाई जाती है। उक्त विद्वानों की निजी धारणा के अनुसार कालिदास का समय पञ्चम शताब्दी था और वे अश्वघोष से बाद के कवि थे। अतएव वे कालिदास और अश्वघोष के मध्यकाल में

---

(१) नव शराव सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेत् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत ॥

(२) भो काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।

भास की स्थिति मानकर उनका समय तृतीय शताब्दी स्वीकार करते हैं। भास के नाम के साथ जिन नाटकों का उल्लेख किया गया है उनका लेखक कोई अज्ञात दक्षिणी कवि होना चाहिये जिसकी स्थिति ईसा के बाद सप्तम शताब्दी में ठहरती है। ऐसी किंवदन्ती है पर इस मत में भी विद्वज्जन रुचि नहीं लेते। श्री टी० गणपति शास्त्री जी ने अनेक प्रमाणों से यह प्रमाणित किया है कि भास कवि ई० पू० चौथी शताब्दी में हुए थे और जब शास्त्री जी के द्वारा दिये गये प्रमाणों का खण्डन करने के लिए कोई प्रबल प्रमाण उपलब्ध नहीं है तो ई० पू० चौथी शताब्दी को ही स्वीकार करना युक्तियुक्त होगा।

जीवनी

भास के द्वारा रचित नाटकों के आदि या अन्त में कहीं भी लेखक का नाम निर्देश नहीं है। ऐसी स्थिति में महाकवि भास के जीवन का रहस्योद्घाटन करना सहज कार्य नहीं। पर उनके ग्रन्थों का पर्यवेक्षण करने से जो निष्कर्ष निकलता है उसी के आधार पर कवि की जीवनसम्बन्धी घटनाओं पर किञ्चित् प्रकाश डाला जा सकता है। श्री पुसाल्कर जी की शब्दावली में 'भास धर्मभीरु ब्राह्मण थे'। वे दक्षिण के नहीं बल्कि उत्तर भारत के अधिवासी थे। इसके प्रमाण में स्वप्नवासवदत्तम् और 'बालचरित' का भरतवाक्य प्रस्तुत है—

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

प्रस्तुत भरतवाक्य में कवि परमात्मा से प्रार्थना करता है कि जिस पृथ्वी के दोनों हिस्सों में हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत दो कुण्डलों की भाँति सुशोभित हैं, हमारे राजा समागरा उस वसुन्धरा के मध्य एकच्छत्र राज्य करें। प्रकृत श्लोक में हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत को भगवती वसुन्धरा के कर्ण कुण्डलों से उपमा दी है। भास ने दक्षिण कर्ण (कान) विन्ध्य तथा वाम कर्ण हिमगिरि कल्पित किया है। भास की वसुन्धरा का विस्तार पूर्व से पश्चिम पर्यन्त है। उनकी पृथ्वी उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में विन्ध्य पर्यन्त है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी। इसी सीमा के अन्दर कहीं कवि का स्थान था। भास वर्णाश्रम-धर्म के पक्षपाती थे। देवता तथा यज्ञ से सम्बन्धित स्तोत्रों में उनकी आस्था थी। गौ को भी वे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। वे किसी राजा के राजपण्डित थे। भास ने अपने राजा को 'राजसिंह' शब्द से अभिहित किया है। यह शब्द किसी व्यक्ति की संज्ञा है या साधारणतः राजमात्र का बोधक है यह ज्ञात नहीं है। भास राजघरानों एवं राजकीय जीवन से सुपरिचित थे। वे हास्यप्रिय तथा नम्र प्रकृति के थे। वे बातचीत की कला में निपुण मानव स्वभाव तथा प्राकृतिक सुन्दरता के

प्रेमी एवं चतुर पारखी थे।[1] सम्भव है कवि का पारिवारिक जीवन आनन्दपूर्ण एवं सुख-शान्तिदायक रहा हो। वे कर्तव्यपरायण पुत्र के पिता, साध्वी पत्नी के पति तथा सन्तानप्रिय पिता थे। अविभाजित-कुटुम्बप्रणाली के परिपोषक एवं गुरुजनों की प्रतिष्ठा करनेवाले थे। कवि के जीवन में आशा का प्रतिबिम्ब तथा राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है। वे स्वतन्त्रता तथा न्याय-परायणता के पक्षपाती एवं वैष्णवधर्मावलम्बी थे। इन विशेषणों के आधार पर यही कहना पड़ता है कि भास संस्कृत साहित्य के एक विशिष्ट अध्येता एवं सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि थे।[1]

ग्रन्थ

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री जी ने भास के जिन तेरह रूपकों की खोज की है वे निम्नलिखित हैं :—

१ प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, २ स्वप्नवासवदत्तम्, ३ प्रतिमानाटकम्, ४ पञ्चरात्रम्, ५ अभिषेकनाटकम्, ६ मध्यमव्यायोगः, ७ अविमारकम्, ८ चारुदत्तम्, ९ कर्णभारम्, १० दूतवाक्यम्, ११ दूतघटोत्कचम्, १२ ऊरुभङ्गम् तथा १३ बालचरितम्।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—प्रतिज्ञायौगन्धरायण में कौशाम्बी के राजा वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के हरण की कथा है। आखेट के प्रेमी राजा उदयन के कृत्रिम हाथी के छल से महासेन द्वारा पकड़े जाने पर उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण राजा को बन्धन से मुक्ति दिलाने और कुमारी वासवदत्ता के साथ उनका पाणिग्रहण कराने की प्रतिज्ञा करता है। मन्त्री की दृढ प्रतिज्ञा तथा कुटिल नीति का यह सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है। इसी के आधार पर इस रूपक का नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' पड़ा है।

(२) स्वप्नवासवदत्तम्—भास की सभी कृतियों में यह सर्वोत्तम रचना है। इसे 'प्रतिज्ञानाटिका' का उत्तरार्ध ही समझना सगत एव उचित होगा। इस रूपक में राजा उदयन का वासवदत्ता के साथ स्वप्नावस्था में योग होता है। इसी आधार पर इस रूपक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' रखा गया है। प्रद्योत के राजमहल से वासवदत्ता का हरण कर लाने के बाद राजा उदयन विषयवासना में लिप्त हो जाता है और राजकीय कर्तव्यों में किसी प्रकार की रुचि नहीं लेता। ऐसी दशा में विरोधियों का होना स्वाभाविक ही है। राजा आरुणि को आक्रमण करने का सुअवसर मिल जाता है। उदयन को अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिये मगधनरेश दर्शक की सहायता लेना अत्यावश्यक होता है। यौगन्धरायण वासवदत्ता के अग्नि में जल मरने का मिथ्या समाचार फैलाता है, परन्तु वास्तव में

रूप से आकर मगध के राजा दर्शक की भगिनी पद्मावती के संरक्षण में रह जाता है। कालान्तर में वत्सराज का पद्मावती के साथ शुभ विवाह हो जाता है। एक दिन राजा वासवदत्ता को स्वप्नावस्था में देखता है और उससे मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो जाता है। उसके जीवित होने में निश्चित विश्वास होने लगता है। बाद में वासवदत्ता राजा के समक्ष लाई जाती है और दोनों का आनन्द मिलन होता है। इस विधि से इस रूपक का सुखमय पर्यवसान होता है।

प्रतिमानाटक—इस रूपक का आधार रामायण की कथा है। इसमें राम वनगमन सीताहरण आदि अयोध्याकाण्ड से आरम्भ होकर रावणवध पर्यन्त की घटनाओं का वर्णन किया गया है। इस नाटक के आधार पर अतीत भारत के ललितकलासम्बन्धी नूतन तत्त्व का मूल्याङ्कन किया जा सकता है। अतीत काल में भारतीय नरेशों के देवकुल होते थे जिनमें मानवशरीर प्रमाण के बाद राजाओं की प्रस्तर की बड़ी मूर्तियाँ रखी जाती थीं। इक्ष्वाकुवंश के नरेशों का भी देवकुल था जिसमें दिवंगत राजाओं की प्रतिमायें रखी जाती थीं। राजा दशरथ की भी मूर्ति देवकुल में रखी गई है। भरत ने अपने मामा के घर से लौटते समय नगर से बाहर देवकुल में रखी हुई अपने पिता दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनकी मृत्यु का अनुमान स्वयं ही कर लिया। इसी प्रतिमा के आधार पर इस रूपक का नाम प्रतिमानाटक है।

पञ्चरात्र—महाभारत की कथा की एक घटना को लेकर इस नाटक की रचना हुई है। दुर्योधन यज्ञ में गुरु द्रोणाचार्य को मनोवाञ्छित दक्षिणा देने के लिए उद्यत होता है। द्रोणाचार्य ने पाण्डवों के निमित्त आधा राज्य देने के लिए कहा—इस शर्त पर कि पाँच रात्रियों के भीतर पाण्डव मिल जायेंगे तो वह उन्हें राज्य दे देगा। द्रोणाचार्य इस प्रतिज्ञा को स्वीकार करते हैं। बाद में गोहरण के उपलक्ष्य में कौरव राजा विराट की राजधानी पर आक्रमण करते हैं। राजकुमार उत्तर कौरवों से युद्ध करने के लिए चल देता है। ऐसी स्थिति में अज्ञातावस्था में स्थित अर्जुन की सहायता पाकर उत्तर की विजय होती है। पाण्डव समय के साथ प्रकाश में आते हैं। द्रोणाचार्य दुर्योधन को पूर्वकृत प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाते हैं। दुर्योधन उन्हें आधा राज्य दे देता है। महाभारत की कथा में कोई सङ्गति न मिलने से यह घटना अंशतः कविप्रतिभा की उपज प्रतीत होती है।

अभिषेक—इस नाटक में किष्किन्धाकाण्ड सुन्दरकाण्ड लङ्काकाण्ड तथा राम के राज्याभिषेक पर्यन्त की कथा वर्णित है। इसी राज्याभिषेक के कारण उक्त नाटक का नाम 'अभिषेक' पड़ा है।

मध्यमव्यायोग—इस नाटक में पाण्डुपुत्रों के वनवास के समय घटोत्कच के

हाथों से भीम द्वारा एक ब्राह्मणबालक की सुरक्षा की कथा वर्णित है। व्यायोग शब्द नाटकों का एक भेद है। मध्यम शब्द भीम और उस ब्राह्मण बालक के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसे भीम ने घटोत्कच के क्रूर हाथों से बचाया था। अतएव इसका नाम 'मध्यमव्यायोग' रखा गया है।

अविमारक—इस रूपक में सौवीर राजा के पुत्र विष्णुसेन, जो अविमारक के नाम से प्रख्यात है तथा राजा कुन्तिभोज की लड़की कुरङ्गी के विवाह और प्रणय की घटना का उल्लेख किया गया है। सम्भव है किसी अतीत परम्परागत आख्यायिका को प्रकृत नाटक का रूप दिया गया है, जिसका निर्देश कामसूत्र में पाया जाता है। विष्णुसेन ने भेड़रूपधारी 'अवि' नामक दैत्य को मारा था। इसलिये इस नाटक का नाम 'अविमारक' रखा गया है।

दरिद्रचारुदत्त—इस रूपक में ऐश्वर्यहीन पर चरित्रवान् विप्र चारुदत्त और गुणग्राहिणी वाराङ्गना वसन्तसेना की प्रेमलीला वर्णित है।

कर्णभार, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच तथा ऊरुभङ्ग—महाभारत के महत्त्वपूर्ण तत्तत् घटनाचक्रों से उक्त नाटक सम्बन्ध रखते हैं।

भास की कृतियों को विषयानुसार पांच भागों में बांटा जा सकता है—रामायण पर आधारित नाटक, महाभारत पर आधारित नाटक, भागवत-कथाश्रित रूपक, लोकप्रचलित कथा पर आश्रित नाटक और उदयन की कथा से सम्बन्धित नाटक।

प्रामाणिकता

म० म० श्रीगणपति शास्त्रीजी द्वारा अनुसन्धान किये गये तेरह नाटकों की प्रामाणिकता में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग भासकृत प्रचलित नाटकों को उनकी वास्तविक कृति न मानकर उनके नाटकों का संक्षिप्त रूप मानते हैं। कुछ लोग उपलब्ध नाटकों के कुछ भागों को तो भास की रचना और कुछ अंश को किसी अन्य की कृति बतलाते हैं। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि भास के नाटक अपूर्ण अवस्था में मिले थे; सम्भव है किसी अन्य कवि ने उन्हें पूरा किया हो। कुछ विद्वान् 'स्वप्नवासवदत्तम्' को तो भासकृत मानते हैं, पर शेष नाटकों को, जो भास के नाम पर प्रचलित हैं, उनकी कृति मानने के लिये कदापि सहमत नहीं हैं। परन्तु इन बातों का उचित उत्तर देने के लिये (१)शास्त्रीजी, (२)पूज्यपाद श्री बलदेव जी उपाध्याय तथा (३)श्री कान्तानाथ जी

(१) देखिये—म म गणपति शास्त्री कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि नाटकों की भूमिका।

(२) देखिये—संस्कृत साहित्य का इतिहास (उपाध्याय जी कृत)।

(३) देखिये—स्वप्नवासवदत्तम् की भूमिका (श्रीतैलङ्गशास्त्रीजी कृत)।

लेस्ग आदि विद्वानों ने अनेक प्रमाण एवं युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। उनका कहना है कि नाटकों के रचनासादृश्य, भाषाविन्यास तथा कुछ विशेषताओं आदि पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि इन तेरह नाटकों का निर्माता एक ही कवि है। इन विद्वानों ने प्रामाणिकता के पक्ष में जो युक्तियाँ एवं सम्मितियाँ दी हैं उनका सारांश निम्नलिखित है—

(अ) भास के नाम पर प्रख्यात एवं प्रचलित सब नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' से आरम्भ होते हैं। अनन्तर सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है और मङ्गलगान करता है।

(आ) भास के नाटकों में सर्वत्र प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' का प्रयोग किया गया है परन्तु न तो उनमें कवि का नामोल्लेख है और न नाटक का ही। ये विशेषतायें भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा की प्रसिद्धि होने से पूर्व काल की ओर संकेत करती हैं।

(इ) प्रत्येक ग्रन्थ की समाप्ति में भरतवाक्य के माध्यम से प्रार्थना में 'महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः' या अन्य किसी तत्सम पद्य का प्रयोग किया गया है। नाटकों का आद्यन्त एकसा है। बहुत से नाटकों के आरम्भ में मुद्रालङ्कार के माध्यम से प्रमुख प्रमुख पात्रों का नामनिर्देश किया गया है।

(ई) भाषा छन्द पद्य भाव कल्पना और घटना आदि प्रायः सब नाटकों में समान हैं। बहुत से अलङ्कारशास्त्र के रचयिताओं ने भी भास के नाटकों से पद्य उद्धृत करके अपने ग्रन्थों की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। वामन, दण्डी, आचार्य अभिनव गुप्त आदि कवियों ने उनके किसी न किसी श्लोक आदि को उद्धरण की कोटि में रखा है।

(उ) भासकृत नाटकों में प्रयुक्त अनेक अपाणिनीय प्रयोग भी इनकी रचनाओं की प्रामाणिकता एवं प्राचीनता में सहयोग देते हैं। डा० मैक्स लीन्डेनेव आदि का कथन है कि प्रचलित नाटकों में भरतमुनिप्रणीत नाट्यशास्त्र में वर्णित नाटक के नियमों का उल्लंघन किया गया है जैसे—'ऊरुभङ्ग' में दुर्योधन की मृत्यु मञ्च के ऊपर दिखलाना 'प्रतिमा' में राम के द्वारा बाली का वध रङ्गमञ्च के ऊपर दिखलाना आदि बातें शास्त्रीय परम्परा के विरुद्ध हैं। उक्त प्रथा उस युग की ओर संकेत करती है जब कि भरतमुनि का यह नाट्यशास्त्र साहित्य समाज में पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित एवं विकसित नहीं हो सका था। इस आधार पर यह भी कहना उचित होगा कि उक्त नाटकों का निर्माता एक ही कवि रहा होगा और वह भास के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

नाट्यकला

भास के नाटकों में मनुष्य जीवन के विविध रूपों का पर्यवेक्षण करने का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है। अतएव उनके रूपकों में विविधता एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा की झलक विशेषतः दिखाई पड़ती है। दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरुभङ्ग 'एकाकी' नाटक की श्रेणी में आते हैं, पर प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमा इत्यादि पूर्ण विकसित नाटक माने जाते हैं। इनके सब नाटक बड़ी सरलता से रङ्गमञ्च पर खेले जाने योग्य हुये हैं। अभिनेयता इन रूपकों को सबसे बड़ी विशेषता है। इन नाटकों में न तो वर्णन की प्रचुरता पायी जाती, न अनावश्यक कथावस्तु का विस्तार ही, जो अभिनेताओं की अभिनय-कला की गतिविधि के प्रतिरोधक है। भिन्न-भिन्न अवस्था में भिन्न-भिन्न भावों और विषयों के सूक्ष्म वर्णन मे भास सिद्धहस्त हैं। वाग्बाहुल्य से मानों उनका स्पर्श ही नहीं है। इनका नाटक सुव्यवस्थित, सुसङ्घटित और चुस्त है। पात्रों के संवाद भी नपे-तुले शब्दों में हैं। पात्र उपयुक्त बातों को चुने हुए शब्दों में कहना अधिक पसन्द करते हैं। वे अनुपयुक्त बकवाद नहीं करते। भास संवादकला के विशेषज्ञ हैं। ये भली-भांति जानते हैं कि कौन व्यक्ति किस परिस्थिति में क्या कहेगा या कहना चाहेगा। वे मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व को सीधी भाषा में सरलता से व्यक्त कर देते हैं। अतएव भास के नाटक शास्त्र की दृष्टि से सुबोध, अभिनेय और सरल हैं।

शैली

भास की शैली अपने ढङ्ग की निराली है। भाषा प्रभावोत्पादक और मुहावरेदार है। इनकी भाषा में जगह-जगह स्वभावोक्ति का पुट भरा मिलता है। इन्हें लम्बे लम्बे समस्त पदों का प्रयोग पसन्द नहीं है। यद्यपि गद्यकाव्यों और महाकाव्यों में क्लिष्ट भाषा एवं समासयुक्त पदों की प्रचुरता दृष्टिगोचर होती है तथापि नाटक के लिये वह सर्वथा अनुपयुक्त है। नाट्यशास्त्र के लिये भाषा की सरलता, सरसता, स्फुटता, प्रसन्नता, गम्भीरता, मधुरता, मनोरञ्जकता आदि अपेक्षित हैं। भास के विचार और भाव उच्च तथा हृदयङ्गम करने योग्य है। इनकी भाषा में सरलता है। कथोपकथन और कवित्व की दृष्टि से भी इनके नाटक संस्कृतसाहित्य के किसी भी सर्वसम्मानित कवि और नाटककार से कम नहीं है। कालिदास जैसे प्रख्यात महाकवियों में भी, माधुर्य, प्रसाद आदि गुण उपलब्ध होते हैं, पर भास की रचना में ये गुण पूर्णरूपेण विकसित हुए हैं। इनके पद्य और गद्य दोनों प्रशंसनीय है। इनकी शैली और भाषा उस युग की ओर निर्देश करती है, जब संस्कृत जनसाधारण की भाषा थी।

भास की वर्णनकला बड़ी प्रौढ़ और अपने ढङ्ग की अनोखी है। जैसे नाटक का ढङ्ग भाषा है वैसे ही उक्तिप्रकार भी। भास का उक्तिप्रकार भी विचित्र है, जैसे स्वीकृत्यर्थक आम् तथा 'बाढम्' का प्रयोग 'यदि तथा 'चेत् का प्रयोग, कुशल-प्रश्न के लिए सुखमायस्य' आदि का प्रयोग। कालिदास, भवभूति आदि कवियों ने इनके ग्रन्थों की छाया से स्वग्रन्थों की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। भास रचित 'अविमारक' नाटक में वर्णित मध्याह्न में भगवान् भास्कर के प्रखर ताप से तपे हुए संसार को देखिये—

> अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
> यक्ष्मार्ता इव पादपा प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात्।
> विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्तानना पर्वता
> लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥

इस मध्याह्नकालीन वर्णन की 'मालविकाग्निमित्र' के पत्रच्छायासु हंसा आदि कालिदास के मध्याह्नवर्णन से समता कीजिए। अन्तर इतना ही है कि कालिदास राजा के उद्यान में पड़े हैं और भास जंगल में।

भास ने अपने स्वप्नवासवदत्तम् में तपोभूमि का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया है—

> विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
> वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।
> भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
> निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥

भास के द्वारा रचित तपोवन के वर्णन को पढ़कर 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में वर्णित कालिदास के तपोवन के आभोग की स्मृति जागृत हो जाती है। स्वेच्छया इतस्ततः विचरण करनेवाले हरिण दोनों को आकर्षित कर रहे हैं।

भवभूतिरचित 'उत्तररामचरित' के दूसरे अङ्क का आत्रेयी संवाद 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथम अङ्क के विष्कम्भसंवाद की प्रतिकृति या छाया कहा जा सकता है। भास बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् के चित्रों को चित्रित करने में सिद्धहस्त हैं। उदाहरणार्थ स्वप्न नाटक का पञ्चमांक द्रष्टव्य है। प्रति

भास के रूपक अनेक मनोरम चित्रों से चित्रित एवं सुसज्जित हैं। अस्तु इस लघु निबन्ध में महाकवि की बहुमुखी प्रतिभा एवं गुणों को लिपिबद्ध करना मादृश जन के लिये असम्भव है।

पात्र-चरित्र-चित्रण

भास के पात्र आकारमात्र नहीं, अपितु सजीव प्राणी हैं। उनका चरित्र इतना विशद एवं उत्कृष्ट है कि वे साहित्यसंसार में सदैव अमर रहेंगे।

चारुदत्त

चारुदत्त प्रस्तुत रूपक का नायक है, जो एक उज्जयिनी के व्यावसायिक ब्राह्मण के रूप में उपस्थापित किया गया है। यह अपनी परोपकारी प्रवृत्ति एवं असाधारण गुणों के कारण सबको प्रभावित करता है। वह जात्या तो ब्राह्मण है पर कर्म से वैश्य है। वह सार्थवाह का पुत्र और स्वयं भी सार्थवाह (व्यापारियों के काफिले का मुखिया या नेता) है। एतदर्थ दूसरे अङ्क में जब चेटी वसन्तसेना से यह जानने के लिए अभिलाषा प्रकट करती है कि 'क्या विद्याविशेष से रमणीय किसी ब्राह्मण को चाहती हो? तो वह उत्तर देती है 'पूजनीय खलु स जन' अर्थात् नहीं (पृ० ५३)। तथापि वह ब्राह्मणपुत्र चारुदत्त से अपना प्रणय-सूत्र जोड़ती है। । एकमात्र कारण यही है कि वह किसी ऐसे विप्र से अनुराग नहीं करती जो जाति तथा कर्म दोनों प्रकार से ब्राह्मण है। उसके हृदय में ऐसे पुरुष की प्रतिमा विराज रही है जो जन्म से ब्राह्मण है पर कर्मणा वैश्य। वह रूपवान् एवं गुणसम्पन्न व्यक्ति है। दूसरे अङ्क में संवाहक आर्य चारुदत्त का परिचय देते हुए वसन्तसेना से कहता है 'आकृतिमान् अविक्रमन् अनुत्सिको ललित.' इत्यादि (पृ० ६१)। वह संगीत विद्या का प्रेमी एवं चतुर पारखी भी है। इसीलिये तीसरे अङ्क के आरम्भ में वह विदूषक से वीणा की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है, वह शरणागत-वत्सल है। वह वसन्तसेना को जो राजश्यालक (शकार) से त्रस्त है सुरक्षा का वचन देता है (पृ० ५८)।

चारुदत्त पहले धनवान् था। पर वह अपनी असीमित उदारता एवं द्यूत (जुआ) की प्रवृत्ति के फलस्वरूप शीघ्र ही धनहीन हो जाता है। वह इतना निर्धन हो जाता है कि वह अपने महल की आवश्यक सफाई भी नहीं करवा पाता। उसके घर की देहली पर तृण एवं यव के अङ्कुर तक निकल आये हैं (पृ० १२)। उसे अपनी गरीबी पर पश्चात्ताप होता है। फिर भी अपनी इस दरिद्रमयी परिस्थिति में पार्श्ववर्ती वायुमण्डल का सूक्ष्म निरीक्षक बना रहता है। इस उजाड़ परिस्थिति में उसे मित्रों में अपनी उपेक्षा का कटु अनुभव होता है (१४)। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'पाप कर्म-च यत् परैरपि कृत तत्तस्य सम्भाव्यते', 'दारिद्र्य षष्ठ महापातकम्' और 'सर्व-शून्य दरिद्रस्य' इत्यादि। लेकिन इतने पर भी उसे सन्तोष इस बात पर है

कि वह इस दीनहीन दशा में अपने मौखिक सन्तुलन को खो नहीं दिया है—'सत्त्वं च मे परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम्'।

चारुदत्त स्वभावतः गम्भीर तथा उदार है। जब भी उसे कोई मनुष्य एवं मनोरम सेवा की सूचना देता है तो वह उसे पुरस्कार देता है। कर्णपूर उसका दृष्टान्त है। 'धरोहर' (न्यास) वस्तु को वह एक पवित्र एवं संरक्षणीय द्रव्य समझता है। वसन्तसेना के पास प्रेषित की गई 'मुक्तावली' इस बात की साक्षी है। चारुदत्त अपनी दरिद्रावस्था में भी मित्रों के कटु वचन या अपराधों पर झुंझलाता नहीं अपितु उसको सहन कर लेता है। विदूषक (मैत्रेय) अलंकार की चोरी का उत्तरदायित्व उसी के माथे मढ़ता है और अपने यह कह करके अलग हो जाता है कि अच्छा किया कि अलंकार आपको दे दिया' (पृ० १७)। परन्तु चारुदत्त उसके ऊपर क्रोधित होने की अपेक्षा केवल इतना ही कहकर सन्ताप करता है—हन्त हतं सुवर्णभाण्डम्। चारुदत्त धीर स्वभाव का व्यक्ति है। जब विदूषक उसे सूचित करता है कि शकार वसन्तसेना को घर से निकालने की धमकी दे गया है तो वह उस कथन उपेक्षा भाव से सुन लेता है। इस प्रकार अनेकानेक वैयक्तिक गुणों के साथ-साथ धर्मी-देवताओं में निष्ठा की भी मात्रा पर्याप्त रूप से पाते हैं। जब विदूषक मातृ का आदि देवताओं की अर्चना में अश्रद्धाप्रकट करता है तो वह कहता है—मूर्ख! यथाविभवनास्त्यर्थान्। मनसा तुष्यन्ति देवतानि' इत्यादि (पृ० ११)। वह भाग्यवादी है। प्रथम अंक में विदूषक के साथ बातचीत करते हुए वह कहता है कि धन भाग्य के अनुसार होते रहते हैं (पृ० १५)।

चारुदत्त विलासप्रिय व्यक्ति है। वह ब्राह्मणी' जैसी पत्नी को पाकर भी रूप एवं यौवन से सम्पन्न वसन्तसेना को हृदय से प्यार करता है। परन्तु यह स्मरणीय है कि वह वसन्तसेना पर मोहित होने पर भी अपने गार्हस्थ्य जीवन एवं धर्म को भुला नहीं देता। उसे ब्राह्मणी जैसी पत्नी तथा विदूषक जैसे मित्र का विशेष गौरव प्राप्त है। वह स्वयं इसकी प्रशंसा करता है— किंवाहं दरिद्रः, यस्य मम-'विभवानुगता भार्या' —इत्यादि (पृ० १०)। चारुदत्त में एक चतुर नागरिक का गुण है। उसे मालूम है कि अपनी प्रेयसी को किस भाँति अनुकूल बनाया जा सकता है। यह ज्ञात होने पर कि जिसे वह रदनिका समझ रहा था वह वसन्तसेना है वह उससे कहता है—'यदवमहमपि तावद् विज्ञातप्रयुक्तेन प्रेष्यसमुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि (पृ० ४६)।

वसन्तसेना भी उसको हृदय से चाहती थी इसका स्वयं उसे पता है। विदूषक वसन्तसेना के समक्ष ही उसे कहता है—'भो चारुदत्त! वसन्तसेना स्वस्थियं या भवता कामदेवायतनमप्रभृति नयनमात्रसंस्तुता सन्निहित

मनोभवेन हृदयेनोद्वहते। तत्परत्वमिमाम (पृ० ४५) वसन्तसेना उक्त बातका कोई प्रत्युत्तर नहीं देती बल्कि चारुदत्त की भाँति वह भी यही कहती है कि—'अदत्तभूमिपरितोषणार्पणेनापराद्धात्मानं शीर्षेण प्रसादयामि' (पृ० ४६)। इस प्रकार हम देखते हैं कि चारुदत्त विलासमय जीवन में भी नैतिक नियमों का उचित पथ उपस्थापित करता है।

चारुदत्त के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए हमें यही कहना पड़ता है कि उसका चरित्र अनेकानेक वैयक्तिक एवं नैतिक गुणों से परिपूर्ण है। इसमें दोष हैं तो यही है कि वह एक सामान्य स्त्री (गणिका) वसन्तसेना से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थिर करता है और दूसरा यह है कि उसमें द्यूतक्रीडा (जुआ) की प्रवृत्ति है।

वसन्तसेना

वसन्तसेना प्रस्तुत कृति की नायिका के रूप में उपस्थापित की गई है। वह उज्जयिनी की एक गणिका है। यद्यपि वह एक सामान्य नायिका है, जिसने अपने आपको चारुदत्त के साथ रागात्मक सूत्र में जोड़ दिया है। फिर भी उसका स्तर गिरा हुआ नहीं है। वह भी एक अभिजात कुल की महिला होने का दम भरती है 'एष मे अभिनिवेशः अभिजनेन तोल्यते' (पृ० २०)। इस प्रकार चारुदत्त की भाँति वसन्तसेना में भी आवश्यक गुण विद्यमान हैं। वह इस बात से अच्छी तरह परिचित है कि अपने प्रेमी के प्रणय-सम्पन्न व्यवहार का किस तरह पालन करना चाहिए। पहले अङ्क में जब चारुदत्त उससे उसके साथ अमवश परिचारिका की तरह व्यवहार करने के अपराध की क्षमा-याचना करता है तो वह भी अपने अपराध की क्षमा की मांग करते हुए कहती है—

'अदत्तभूमिपरितोषणार्पणेनापराद्धात्मानं शीर्षेण प्रसादयामि' (पृ० ४६)।

वसन्तसेना चारुदत्त के उत्कृष्ट गुणों से मुग्ध होकर उसे हृदय से चाहती है। इस बात की पुष्टि प्रथम अङ्क में शकार के कथन से हो जाती है (पृ० २९)। उसमें साहस की पुष्टि तब दिखाई पड़ती है जब वह अपने आपको शकार से बचाने का प्रयत्न करती है 'अत्र रत्नमेव सत्रा रक्षितव्यं' चारुदत्त की भाँति वसन्तसेना भी शरणागतवत्सला है। जब संवाहक उसके घर शरण लेता है तो वह शरणागत के नाते स्थान तो देती ही है साथ ही साथ संवाहक के चारुदत्त का परिचय देने पर वह उसका विशेष सत्कार करती है। चारुदत्त की दरिद्रता से वह अच्छी तरह परिचित है। फिर भी वह उसे चाहती है। अन्य वेश्याओं की भाँति उसका प्रेम 'धर्मसूत्र' एवं कृत्रिम नहीं है। वह तो उसके गुणों से आकर्षित है। उसे यह भली भाँति विदित है कि अति दरिद्र पुरुष पर आसक्त गणिका की प्रतिष्ठा लोक में सुरक्षित रहती है। उसकी अभिलाषा चारुदत्त से

मिलने का है। द्वितीय अङ्क में मदनिका वसन्तसेना से कहती है कि जब चारुदत्त के प्रति तुम्हारा बहुत बड़ा सम्मान है तो स्वयं क्यों नहीं चली जाती? इसपर वह तर्कयुक्त उत्तर देती है कि मैं तो जाऊँगी ही पर वैसा करने पर दरिद्रता के कारण अपने आपको प्रत्युपकार करने में असमर्थ पाकर कहीं वह फिर मेरे लिये दुर्लभ न बन जाय। एतदर्थ मैं विलम्ब कर रही हूँ। उक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि वह उससे चिरस्थायी प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है।

चारुदत्त के समान उसमें भी ललित कला की प्रवृत्ति निहित है। यही कारण है कि विदूषक उसकी इस कला पर मुग्ध हो जाता है 'अहो गणिका वाटस्य सश्रीकता' इत्यादि। वसन्तसेना में कृपणता का लवमात्र भी स्थान नहीं है। वह स्वभावतः परोपकारी प्रकृति की महिला है। उसकी उदारता संवाहक के सरक्षण में दृष्टिगोचर होती है। वह संवाहक को विजयी जुआड़ियों से मुक्ति पाने के लिये आशुतोष द्रव्य प्रदान करती है। वह भी यह कह करके कि आप चारुदत्त ही दे रहे हैं ऐसा समझें। वह यह कभी नहीं चाहती कि लोग उसका (परोपकारी प्रवृत्ति के उपलक्ष्य में) गुणानुवाद करें। वह उपकृत व्यक्ति से उपकार का बदला भी नहीं चाहती। संवाहक जब उसकी उदारता से मुग्ध होकर यह कहता है कि मेरी यह मालिश की कला आपके परिजन में उपयुक्त हो जाय तो मैं आपका बड़ा ही आभार मानूँगा। इस पर वसन्तसेना उत्तर देती है—जिसके निमित्त तुमने इस कला की शिक्षा पाई है उसकी उसी की सेवा करनी चाहिए। वह अपनी दासी के साथ अच्छा व्यवहार करती है और जब उसे ज्ञात होता है कि सज्जलक वास्तव में मदनिका से प्रेमसूत्र जोड़ता है तो वह उसे गुलामी से मुक्त ही नहीं करती बल्कि अपने आभूषणों से अलंकृत करके परिणय भी करा देती है। यह इसके उदारता की पराकाष्ठा है। चारुदत्त के प्रति सम्मान अदा करने के लिये गए विदूषक के द्वारा भेजी हुई मुक्तावली हार को सहर्ष ग्रहण कर लेती है। वह एक गम्भीर प्रकृति की नायिका है और वह सदा प्रयत्न करती है कि समाज में उपहासास्पद न हो सके सम्नीजनेनापहसनीयम्त्वम् आत्मानं परिहरामि।

चारुदत्त के प्रति उसका प्रेम पवित्र है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वह चारुदत्त के अनुरूप अपना कर्तव्य प्रदर्शित करती है।

सज्जलक

सज्जलक मदनिका का प्रेमी है। वह चौर्यकला में परम प्रवीण है। वह चोरी करने के लिये उपयोगी सभी सामग्रियों से सजधज कर चारुदत्त के घर चोरी करने जाता है। यह उज्जयिनी का नागरिक नहीं है। सम्भवतः कहीं बाहर से आकर उज्जयिनी में रहने लगा हो। वह मदनिका के प्रेम में इतना पागल हो

वापस करने को कहती है। मदनिका समय के अनुसार कार्य करने की भी क्षमता रखती है। वह सज्जलक से कहती है कि आर्य चारुदत्त की ओर से वसन्तसेना को अलंकार दे दो। ऐसा करने से तुम बच जाओगे आर्य चारुदत्त भी खिन्न नहीं होंगे और मेरे पक्ष में भी हित होगा। मदनिका गणिकाओं के जीवन की अपेक्षा एक आदर्श गृहिणी के जीवन को श्रेयस्कर समझती है। इसीलिये सज्जलक के साथ वसन्तसेना के द्वारा सम्पादित वैवाहिक जीवन के प्रति अरुचि व्यक्त नहीं करती।

विदूषक

चारुदत्त के विदूषक का नाम मैत्रेय है। वह जन्मना ब्राह्मण है। परन्तु वह चारुदत्त का व्यक्तिगत साथी एवं घनिष्ठ मित्र तथा प्रधान सहायक के रूप में उपस्थित होता है। जब चारुदत्त एक श्रीसम्पन्न व्यक्ति था उस समय वह उसके घर खूब खाता पीता था और आनन्दमय जीवन व्यतीत करता था। पर जब से चारुदत्त अपनी उदार प्रकृति के कारण दरिद्रमय जीवन व्यतीत करने लगा था तब से वह पक्षियों की भांति इधर-उधर खा-पीकर एकमात्र रहने के लिये उसके घर जाता है (पृ० ११)। वह व्यवहार से कभी नहीं बताना चाहता कि किसी तरह से चारुदत्त को मानसिक कष्ट पहुँचे। अतएव वह रदनिका के अपमान का संदेश उसे अवगत नहीं कराता।

विदूषक कट्टर धार्मिक नहीं है। उसकी देवी देवताओं के प्रति श्रद्धा नहीं है (पृ० १५)। वह भीरु प्रकृति का है। यही कारण है कि वह अन्धेरे में चतुष्पथ पर बलि अर्पण करने जाने से असमर्थता दिखलाता है। जब रदनिका साथ में भेजी जाती है तब कहीं स्वयं भी जाने को तैयार होता है (पृ० १६)। वह मूर्ख भी है। जब वह अलङ्कारों के बदले मुक्तावली देने जाता है तब वसन्तसेना उसे केवल मौखिक आदर करके विदा करने लगती है इस पर वह स्वयं कहता है— कोऽप्युपचारोऽपि नैतया भणितः' (पृ० ११९)। वह ठिठोलिया भी है। कभी-कभी ऐसी बातें करता है कि हँसी आ जाती है। प्रथम अङ्क में जब वसन्तसेना और चारुदत्त स्व-स्व अपराधों के निमित्त एक दूसरे से क्षमा याचना करते हैं तो उस समय वह कहता है 'भो' विवहन्ताविव शकटिकौ दुर्विनीतबलीवर्दावन्योन्यं समक्लेशयत' इत्यादि (पृ० ४७)। उसे गणिका-प्रसंग अच्छा नहीं लगता है। वह भली भांति जानता है कि वेश्याएँ कुटिल स्वभाव की होती हैं। सम्भवतः वसन्तसेना के प्रति ऐसी ही कुछ धारणा रखता हो। इसलिये जब चारुदत्त 'मुक्तावली' को वसन्तसेना के पास ले जाने को कहता है तब वह आश्चर्य के साथ कहता है—'अहो' अल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डस्य कृते शतसहस्रमूल्या मुक्तावली निर्यातव्या' (पृ० १०२)।

के सुख में सुखी और दुःख में दुखी रहना पसन्द करती है। इतना ही नहीं बल्कि चारुदत्त के सर्वविध प्रसन्नता और सुख सुविधा का सदा ध्यान रखती है। यही कारण है कि वह अपना एक विशिष्ट आभूषण (मुक्तावली) वसन्तसेना को देने के लिए चारुदत्त के पास भेजती है। ऐसा उसे तब करना पड़ता है जब चारुदत्त की सुरक्षा में पड़े हुए वसन्तसेना के आभूषण सज्जलक द्वारा चुरा लिए जाते हैं। वह विचारती है कि जनता कहेगी कि दरिद्र चारुदत्तने अन्धकार हड़पकर चोरी का बहाना कर लिया है। ऐसी परिस्थिति में इसे चारुदत्त के वैभव और अस्थि-चर्ममय देह की अपेक्षा सुयश की बहुत बड़ी भूख है। मुक्तावली का प्रदान इसका उदाहरण है। पर इसका श्रेय अपने ऊपर लेना नहीं चाहती। इसे यह विदित है कि ऐसा कहकर मुक्तावली भेजने से चारुदत्त को हार्दिक कष्ट होगा और वह शायद लेने से अस्वीकार कर दे। इसीलिए षष्ठी के दान के बहाने विदूषक के हाथ भेजती है। चारुदत्त की भांति यह भी धार्मिक विचार की महिला है। षष्ठी का दान इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। ब्राह्मणी यह अच्छी तरह जानती है कि चारुदत्त वसन्तसेना के प्रति रागात्मक और असामाजिक सम्बन्ध रखता है। फिर भी उसमें इतनी धैर्यशीलता है कि इस दुर्भाव को व्यक्त होने नहीं देती। इस तरह हम देखते हैं कि यह उत्तम श्रेणी की आदर्श गृहिणी एवं धीरा नायिका का आदर्श स्थापित करती है।

शकार

शकार प्रस्तुत रूपक का प्रतिनायक है। यह राजा का साला है। सम्भवतः इसकी बहन राजा की परिणीता या रखैली हो। इसी आधार पर इसे राजा का साला (राजश्याल) कहते हैं। यह स्वयं भी 'भट्ट पुत्र' एवं 'राजश्याल' शब्द से सूचित करता है। यह महान् मूर्ख है। इसे बातचीत करने का भी ढंग नहीं है। यह पौराणिक कथाओं को सुन चुका है। पर इसका ज्ञान असन्तुलित है। यह वसन्तसेना को धमकी देते हुए कहता है 'अहं त्वां गृहीत्वा केशहस्ते दुःशासन सीतामिवाहरामि श्रृणोमि गन्धं अवकाशाभ्याम्' 'अन्धकारपूरिताभ्याम् नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामि'। यह वसन्तसेना के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। पर वह उसे हेय एवं उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी। यह बलप्रयोग के द्वारा उसे आत्मसात् करना चाहता है। पर इसे असफलता ही मिलती है। यह हठधर्मी है पर स्थिर विचार का व्यक्ति नहीं है। प्रथम अङ्क में विदूषक (मैत्रेय) से चारुदत्त के पास वसन्तसेना को घर से निकाल देने का मरणान्तिक सन्देश तो भेजवाता है। पर अवसर अन्त तक इसका निर्वाह नहीं करता। विट के चले जाने पर स्वयं भी वहां से खिसक जाता है। यह अपने सहयोगियों में न विश्वास ही करता है न प्रेम। विट के साथ भी सम्भवत

यही बात हो। तभी तो रदनिका को आती हुई देखकर यह स्वयं कहता है 'अनया वराक वञ्चयामि' (पृ० ३५)। विट आर्य चारुदत्त के व्यक्तित्व एवं गुण से प्रभावित है और उसकी दानशीलता एवं त्याग की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता है (पृ० ४०)। पर शकार चारुदत्त के गुणों से डाह करते हुए प्रतिद्वन्द्वी का पाठ अदा करता है।

उक्त विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भास कथाविन्यास तथा पात्रों के व्यक्तित्व एवं वास्तविक स्वरूपोद्घाटन में अद्वितीय प्रतिभावान् रूपककार हैं। इसमें विवाद का लेशमात्र भी स्थान नहीं है।

कथास्रोत

प्रस्तुत इतिवृत्त 'वासवदत्ता' के समान ही सम्भव है कि किसी ऐतिहासिक या परम्परागत एवं तात्कालिक प्रचलित कहानी से लिया गया हो। यही कहानी इसी रूप में गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' में भी उपलब्ध होती है। शूद्रक ने अपने 'मृच्छकटिक' के द्वारा भी इस कहानी के कङ्काल में कुछ अधिक रक्तमांस भरने का प्रयास किया है। भास द्वारा रचित 'चारुदत्त' सम्भवतः अपूर्ण है अपेक्षाकृत शूद्रक के मृच्छकटिक के। मृच्छकटिक का इतिवृत्त अपने आप में पूर्ण है क्योंकि उसमें सामाजिक राजनीति का पूरा पक्ष उपस्थापित किया गया है। यह कथास्रोत की निश्चित निम्नतम सीमा की बात हुई। इसे उपरितम सीमा पर भी लाया जा सकता है। पण्डितवर श्री कान्तानाथ जी शास्त्री 'तैलङ्ग का कहना है कि 'मृच्छकटिक के कर्त्ता' सोमदेव और दण्डी दोनों से पुराने हैं। हाँ गुणाढ्य की बृहत्कथा' को मृच्छकटिक का उपजीव्य कहा जाय तो सम्भव हो सकता है। भूतभाषा में लिखा हुआ यह अतिप्राचीन ग्रन्थ कथासरित्सागर का आधार है। अतः उसमें भी ऐसी कथाएँ रही होंगी। परन्तु हम तो भास के दरिद्र चारुदत्त को मृच्छकटिक' का आधार मानना उचित समझते हैं'।

महाकवि भास के रूपकों के आलोक में आ जाने के कारण 'मृच्छकटिक' के मूल एवं विषय में विद्वानों के विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है। ऐसी स्थिति में भी अब विद्वत्समाज भास के 'चारुदत्त' को ही मृच्छकटिक का आधार स्वीकार करते हैं। भास का प्रस्तुत रूपक चार अङ्कों में विभाजित है। चतुर्थ अङ्क के अन्त में वसन्तसेना अपनी प्रियदासी मदनिका को अलङ्कारों से सुसज्जित करके सज्जलक (मृच्छकटिक का शर्विलक) के साथ विदा कर देती है। तदनन्तर वह अपनी चेटी (चतुरिका) को बुलाकर कहती है—'हञ्जे! पश्य आत्मना मया स्वप्नो दृष्ट एवम्। इस पर चेटी प्रसन्न मुद्रा में उत्तर देती है— प्रियं मे अमृताह्वं नाटकं संवृत्तम्। तदुपरान्त वसन्तसेना अलङ्कारों से अलङ्कृत होकर आर्य चारुदत्त के घर अभिसरण का प्रस्ताव रखती है। चेटी उसका अनुमोदन करती हुई कहती है कि— अज्जुके तथा। एतत् पुनरभिसारिका सहायभूतं दुर्दिनमुपस्थितम्। इस पर वसन्तसेना हँसी की मुद्रा में डपट

१ विशेष विवेचन के लिए देखिये—श्री कान्तानाथ शास्त्री तैलङ्ग सम्पादित मृच्छकटिक की सुषमा पृ० ११।

कर उससे कहती है—'हताशे! मा खलु वर्धय। तब चेटी कहती है—'एवे-त्वज्जुका'। इसी स्थल पर रूपक का पर्यवसान हो जाता है।

भास के 'चारुदत्त' की हस्तलिखित प्रतियों में से एक में चतुर्थ अङ्क के अन्त में 'अवसित चारुदत्तम्' ऐसा उल्लेख मिलता है। इस धरातल पर कुछ आलोचक वर्ग 'चारुदत्त' को वहाँ पूर्ण मानता है जहा वह उपरत होता है। कुछ विद्वान् इस रूपक को अपूर्ण बतलाते हैं। उनका कथन है कि इसमें कम से कम एक अङ्क (अर्थात् पञ्चम अङ्क जिसमें नायिका का मिलन रूप प्रयाण संभावित है) अवश्यमेव होना चाहिए था। अस्तु, लेखक की धारणा है कि 'चारुदत्त' 'मृच्छकटिक' की कथा का उद्गम स्थल है। उसकी कथा में शूद्रक ने अपनी कल्पना प्रसूत शैली का परिचय दिया है अथवा 'बृहत्कथा' के आधार पर राज्यविप्लव वाले अंश को जोड़ दिया है। इस परिस्थिति में भी 'चारुदत्त' की कथा में उदासीनता की अपेक्षा एक नये रस का समावेश हो गया है।

कथासार

प्रथम अंक

'नान्दी के बाद स्थापना आरम्भ होती है। सूत्रधार प्रातःकाल घर से बाहर निकलता है पर भूख के कारण अधिक देर तक ठहर नहीं पाता। वह लौटकर अपने घर में (भोजन सम्बन्धी) विशेष प्रबन्ध का पर्यवेक्षण कर स्वयं सन्देह में पड़ जाता है। पूछताछ करने पर नटी के द्वारा विदित होता है कि 'अभिरूपपति' नामक उपवास (व्रत) के लिये यह प्रबन्ध किया जा रहा है। इसपर यह जानकर कि पूर्वजन्म के द्वारा उपवास का विधान नियत किया गया है वह उसे धन्यवाद देता है। नटी उसे किसी ब्राह्मण को निमन्त्रित करने के लिये अभिलाषा व्यक्त करती है। वह ब्राह्मण की खोज में चल देता है। अचानक उसे मैत्रेय (विदूषक) दिखाई देता है। वह उसे निमन्त्रित करता है। मैत्रेय (भोजन के निमित्त) आमन्त्रण को अस्वीकार कर देता है। सूत्रधार उसमें सुपरिपक्व भोजन और दक्षिणा की लालच देता है। पर मैत्रेय पुनः अस्वीकार कर देता है। इसपर सूत्रधार फिर से अनुरोध करते हुए भी गुण आदि की चर्चा चलाकर चला जाता है। यहीं पर स्थापना समाप्त हो जाती है।

प्रथम अङ्क के प्रथम दृश्य के प्रारम्भ में मैत्रेय मञ्चपर आता है। वह सूत्रधार की कही हुई बातों की पुनरावृत्ति करते हुए कहता है कि किसी अन्य को निमन्त्रित करो। मैं व्यस्त हूँ। इसी प्रसङ्ग में वह चारुदत्त के वैभव काल के सुखमय जीवन और दरिद्रता के कारण वर्तमान दुःखमय स्थिति का भी वर्णन एवं निरूपण करते जाता है। फिर भी उसे सन्तोष है और इसी सन्तुष्टि के कारण षष्ठी तिथि पर देवकार्य को सम्पादन करने वाले आर्य चारुदत्त के निमित्त पुष्प और परिधेय (पहनने योग्य) वस्त्र को लेकर चारुदत्त के समीप चल देता है। तब तक उसे पूजा से लौटते हुए आर्य चारुदत्त दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रथम अङ्क के द्वितीय दृश्य में बलि लिए हुए नायक (चारुदत्त) विदूषक चेटी (रदनिका) का प्रवेश होता है। चारुदत्त अपनी दरिद्रता पर अपार क्षोभ प्रकट करता है। विदूषक उन्हें सान्त्वना देता है।

प्रथम अङ्क के तृतीय दृश्य में विट और शकार से पीड़ा की गई सम्भ्रान्त एवं व्याकुल गणिका (वसन्तसेना) का प्रवेश दिखाया गया है। शकार के कथन से वसन्तसेना का प्रवेश दिखाया गया है। शकार के कथन से वसन्तसेना को विदित हो जाता है कि समीप में ही आर्य चारुदत्त का निवास-स्थान है। इसमें वह अपना सौभाग्य तथा आत्मरक्षा की अनुभूति करती है। वसन्तसेना अँधेरे में

अपना निगाह बचाकर खसक जाती है। वह चारुदत्त के घर के द्वार के समीप जाकर खड़ी होती है। चारुदत्त विदूषक को मातृदेवियों को बलि अर्पण करने के निमित्त चतुष्पथ (चौराहे) पर जाने को बाध्य करता है। विदूषक एकाकी चौराहे पर जाने में भयभीत होता है। पर रदनिका के साथ जाने पर वह तैयार हो जाता है। विदूषक रदनिका को द्वार (दरवाजा) खोलने को कहता है। रदनिका दरवाजा खोलती है। बाहर खड़ी वसन्तसेना आँचल की छोर से हवा मारकर दीपक को बुझा देती है। विदूषक रदनिका को चतुष्पथ पर चलने के लिये कहकर स्वयं फिर से दीपक जलाने अन्दर चला जाता है। इसी बीच में वसन्तसेना भी घर में प्रवेश कर जाती है। बाहर विट शकार को उत्तेजित करता है और वह रदनिका को वसन्तसेना समझकर उसे पकड़ लेता है। इतने में विदूषक दीपक लेकर बाहर आता है और शकार तथा विट द्वारा प्रताड़ित होती हुई रदनिका को बचाता है। विट विदूषक से अपने किए अनुचित व्यवहार की क्षमा याचना करता है और आर्य चारुदत्त के व्यक्तित्व का भय मानकर चला जाता है। पर शकार वसन्तसेना को वापस मांगता है और इस विषय पर विदूषक से कुछ देर तक वाद-विवाद करता है। इसी प्रसंग में वसन्तसेना को वापस न करने पर मरणान्तिक वैर-भाव की आशङ्का देकर चला जाता है। देवकार्य की समाप्ति की सूचना देने के लिये विदूषक तथा रदनिका चल देते हैं।

प्रथम अङ्क में चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझकर देवकार्य के विषय में पूछता है। वह अपना उत्तरीय (आवारक) देता है और उसे भीतर ले जाने को कहता है। वसन्तसेना मौन रहती है। इस पर चारुदत्त कहता है 'रदनिके, क्यों विलम्ब कर रही हो'। इतने में विदूषक और रदनिका अन्दर जाते हैं। विदूषक शकार का सन्देश देता है। वसन्तसेना पहचानी जाती है। वह चारुदत्त के पास अपने आभूषण धरोहर (न्यास) रखकर विदूषक की सुरक्षा-पूर्ण देख-रेख में अपने घर चली जाती है।

द्वितीय अङ्क

द्वितीय अङ्क के प्रथम दृश्य में गणिका और चेटी (मदनिका) मञ्च पर आती हैं। वसन्तसेना अपनी दासी के समक्ष चारुदत्त के प्रति अपना स्नेह व्यक्त करती है। मदनिका चारुदत्त की दरिद्रता की ओर उसका ध्यान आकर्षित करती है। परन्तु उससे उसका स्नेह घटता नहीं।

द्वितीय अङ्क के द्वितीय दृश्य में संवाहक जो स्वयं जुआड़ी भी था वसन्तसेना के घर में प्रवेश करता है। वह विजयी जुआड़ियों के भय से अपनी सुरक्षा एवं शरण की याचना करता है। यह जानकर कि वह चारुदत्त का पुराना

भृत्य है वसन्तसेना उसकी केवल रक्षा ही नहीं करती, अपितु वह उसे चेटी द्वारा उचित द्रव्य देकर उसका ऋण चुका देती है। इस प्रकार वसन्तसेना के वात्सल्य-पूर्ण व्यवहार से प्रभावित हो जाता है और अपने दैनिक जीवन के प्रति विरक्ति के कारण 'प्रव्रज्या' (संन्यास) ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त करके चला जाता है।

द्वितीय अङ्क के तृतीय दृश्य में चेट (कर्णपूर) प्रवेश करता है। वह अपने वीरतापूर्ण कार्य की प्रशंसा में विशेषरूप से मतवाले हाथी के चंगुल से संवाहक भिक्षु (संन्यासी) की रक्षा और आर्य चारुदत्त के द्वारा उक्त काम के उपलक्ष्य में दिये प्रावारक (उत्तरीय) का वृत्तान्त सुनाता है। यह घटना वसन्तसेना तथा चेटी (मदनिका) दोनों के मानस मन्दिर में एक विचित्र कौतूहल पैदा करती है। इसके बाद, वसन्तसेना चारुदत्त का दर्शन की लालसा न कर का उत्साहित करती है। पश्चात् दोनों (वसन्तसेना और मदनिका) चेट के साथ चारुदत्त को देखने के लिए महल की छत की ओर चल देती हैं।

तृतीय अङ्क

तृतीय अङ्क के प्रथम दृश्य में चारुदत्त और विदूषक मञ्च पर आते हैं। चारुदत्त विदूषक से वीणा की प्रशंसा करता है। परन्तु विदूषक को उसमें विशेष अभिरुचि नहीं है। इसके बाद चारुदत्त तथा विदूषक चेट (वर्धमानक) को पुकारते हैं। चेट दरवाजा खोलता है। भीतर जाकर दोनों पैर धोकर सोने की तैयारी करते हैं। अष्टमी तिथि को सुवर्णभाण्ड की सुरक्षा का भार विदूषक अपने ऊपर लिया था। एतदर्थ चेटी विदूषक को सुवर्णभाण्ड देना चाहती है। विदूषक तो पहले टालमटोल करता है पर चारुदत्त की आज्ञा से उसे ले जाता है। चारुदत्त सो जाता है। विदूषक भी सुवर्णभाण्ड हाथ में लिए हुए सो जाता है।

तृतीय अङ्क के द्वितीय दृश्य में सज्जलक प्रवेश करता है। वह सुरङ्ग बनाकर चारुदत्त के घर में घुस जाता है। विदूषक निद्रा में चारुदत्त को पुकारकर कहता है कि मुझे नींद नहीं आ रही है। बाईं आँख फरक रही है। ऐसा लगता है चोर सेंध लगा रहा हो। यदि धन की यही हालत है तो मैं दारिद्र्यमय जीवन को ही पसन्द करूंगा। इस पर चारुदत्त डांट देता है। तदुपरान्त सज्जलक के द्वारा दीपक बुझा दिया जाता है। ऐसी दशा में विदूषक कहता है 'मैं हर लिया गया'। वह चोरी जाने के भय से चारुदत्त को पुकारकर अलङ्कार की पेटी देना चाहता है न लेने पर ब्रह्मशाप का भय दिखलाता है। सज्जलक उसे ले लेता है। इसके बाद नेपथ्य में हुए नगाड़े के शब्द से भयभीत होकर भाग जाता है।

तृतीय अङ्क के तृतीय दृश्य में चेटी (रदनिका) प्रवेश करती है । वह विदूषक को इस बात से अवगत कराती है कि सेंध बनाकर चोर घुस गया । बाद में दोनों चारुदत्त के पास जाकर चोर के घुसने की बात बता देते हैं । यह सुनकर चारुदत्त आश्चर्यित होता है । विदूषक उससे कहता है कि अच्छा हुआ कि मैंने सुवर्णभाण्ड आपको दे दिया । यह सुनकर चारुदत्त पूछता है कि क्या आपने दे दिया ? कब दिया था ? विदूषक उत्तर देता है आधीरात को । इसपर चारुदत्त कहता है खेद की बात है कि सुवर्णभाण्ड चुरा लिया गया । उसे इस बात की चिन्ता भी होती है कि लोग चोरी की बातपर विश्वास न करके दरिद्रता के कारण उलटे मुझे ही बदनाम करेंगे । इसी बीच में चारुदत्त की पत्नी ब्राह्मणी प्रवेश करती है । चेटी ब्राह्मणी को अलंकार की चोरी की बात बता देती है । इस वृत्तान्त को सुनकर ब्राह्मणी चकित होती है । वह अपने पतिदेव को लोकापवाद से बचाने के लिये अपनी सहस्रमूल्यवाली मुक्तावली विदूषक के हाथ भेजती है । चारुदत्त सुवर्णभाण्ड के बदले मुक्तावली देने के लिए विदूषक को वसन्तसेना के घर भेजता है ।

चतुर्थ अंक

चतुर्थ अङ्क के प्रथम दृश्य में वसन्तसेना और मदनिका चित्रफलक हाथ में लिए हुए प्रवेश करती हैं । वसन्तसेना चित्रगत प्रतिमा में आर्य चारुदत्त की प्रतिकृति का आरोप करती हुई मदनिका से कुछ क्षण तर्कपूर्ण बात करती है । इसी बीच में एक दूसरी चेटी आकर वसन्तसेना की माता का आदेश सुनाती है । वह कहती है कि राजश्याल संस्थान (शकार) की गाड़ी (प्रवहण) दरवाजे पर लगी है । माता आज्ञा देती है कि तुम अलंकृत होकर जाओ । इस पर वसन्तसेना रुष्ट हो जाती है । वह जाने से अस्वीकार कर देती है ।

चतुर्थ अङ्क के द्वितीय दृश्य में सज्जलक वसन्तसेना के घर में प्रवेश करता है । मदनिका भी गुप्त रूप से उससे प्रेम करती है । इसी प्रेम में पागल होकर सज्जलक अपनी प्रेयसी मदनिका को वसन्तसेना की गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए चारुदत्त के घर से वसन्तसेना के अलङ्कारों को चुराकर लाया है । तदनन्तर वह इन आभूषणों के साथ मदनिका से मिलता है और उन्हें भेंट के रूप में उसे प्रदान करता है । मदनिका आभूषणों को पहचान लेती है । वह पूछती है कि इसे तुम कहां से लाए हो ? सज्जलक उसे चारुदत्त के घर चोरी की बात बतला देता है । रदनिका और सज्जलक के बीच हो रहे बातचीत को वसन्तसेना भी छिपकर सुनने लगती है । वह उसे चारुदत्त की ओर से वसन्तसेना के पास जाकर अलङ्कार समर्पण करने का उचित परामर्श देती है । सज्जलक उसकी बात मान लेता है ।

चतुर्थ अङ्क के तृतीय दृश्य में चेटी वसन्तसेना को चारुदत्त के घर से एक ब्राह्मण के आगमन की सूचना देती है। वसन्तसेना उसे शीघ्र अन्दर लाने का आदेश देती है। चेटी विदूषक को लेकर अन्दर जाती है। विदूषक वसन्तसेना से कहता है कि चारुदत्त तुम्हारे अलङ्कार को द्यूत में हार गया है। इसलिए उसके बदले यह मुक्तावली ग्रहण करें। यह कहकर वसन्तसेना को मुक्तावली दे देता है। वसन्तसेना मुक्तावली लेकर विदूषक को विदा कर देती है।

तदुपरान्त मदनिका वसन्तसेना को सूचित करती है कि आर्य चारुदत्त के यहाँ से कोई व्यक्ति आया हुआ है जो आप से मिलना चाहता है। वसन्तसेना उसे अन्दर लाने की आज्ञा देती है।

चतुर्थ अङ्क के चतुर्थ दृश्य में मदनिका सज्जलक के साथ प्रवेश करती है। सज्जलक वसन्तसेना से कहता है कि मुझे आर्य चारुदत्त ने भेजा है और यह सन्देश कहलवाया है कि जो अलङ्कार आपने धरोहर के रूप में रखा था उसकी रक्षा करना कठिन काम है क्योंकि घर की मरम्मत आदि नहीं हो पा रही है और कुटुम्ब के लोग भी पास नहीं हैं। ऐसी हालत में आप इसे रख लें। इस पर वसन्तसेना उसे पुनः लौटा देने की बात कहती है। सज्जलक ले जाने से इन्कार कर देता है। बाद में वसन्तसेना मदनिका को अपने अलङ्कारों से भूषित करके परिणीता नायिका के रूप में अपनी गाड़ी में बैठाकर सज्जलक के साथ विदा कर वसन्तसेना चारुदत्त के द्वारा भेजी हुई मुक्तावली पहनकर उसके घर अभिसरण करने को प्रस्तुत होती है। ऐसी परिस्थिति में आकाश में दुर्दिन (काले बादल) उमड़ पड़ते हैं।

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

नायक—दरिद्र सार्थवाह पुत्र चारुदत्त।

विदूषक—(मैत्रेय) चारुदत्त का मित्र।

शकार—(संस्थानक) राजा का श्यालक प्रतिनायक।

विट—शकार का सहचर।

संवाहक—चारुदत्त का भूतपूर्व भृत्य (मालिश करनेवाला) जुआड़ी।

चेट—(कर्णपूर) वसन्तसेना का दास।

सज्जलक—मदनिका का प्रेमी।

चेट—(वर्धमानक) चारुदत्त का घरेलू अनुचर।

सूत्रधार—रूपक का प्रधान नट।

स्त्री पात्र

गणिका—नायिका वसन्तसेना।

ब्राह्मणी—चारुदत्त की भार्या।

रदनिका—चारुदत्त की दासी (चेटी)।

मदनिका—वसन्तसेना की विश्वस्त दासी सज्जलक की प्रेमिका।

विच्छित्तिका—वसन्तसेना की परिचारिका।

चतुरिका— ,, ,,

नटी—सूत्रधार की स्त्री।

॥ श्री ॥

भासनाटकचक्रे

चारुदत्तम्

'प्रकाश' संस्कृत हिन्दीव्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—किण्णु खु अज्ज पच्चूस एव्व गेहादो णिक्कन्तस्स

नान्द्यन्ते इति—नान्द्याः—पूर्वरङ्गीभूतायाः मङ्गलक्रियायाः आशीर्वादरूपायाः वा अन्ते = समाप्तौ नान्दीविधानानन्तरमित्यर्थः । आरम्भे हि विघ्नविघातादिप्रयोजनं मङ्गलं नितरामावश्यकं नाटकीयरचनानियमप्राप्तं च कर्तव्यं प्रथममुद्दिशन् कविः नान्दी ति समाचचार । देवद्विजनृपादीनां स्तुत्याशीरन्यतरपरं वचो नान्दी भवति । तस्याश्च लक्षणमुक्तवान् भरतमुनिः— आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता' इति । ततः इति-नान्द्यां च नेपथ्य एवावसितायां ततः तस्मात् स्थलात् नेपथ्यादिति यावत् । अथवा ततो नाम नान्दीविधानाव्यवहितोत्तरकाल इति । तसिल्प्रत्ययस्य सार्वविभक्तिकत्वात् सप्तम्यर्थग्रहणम् । प्रविशति = रङ्गमञ्चं समागच्छति । कस्यात्र प्रवेश इत्याकाङ्क्षायामाह—सूत्रधार इति । सूत्रधारः = प्रधाननटः— नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते । अथवा सूत्रं = नाटकबीजं तद् धारयति वहति उपन्यस्यतीत्यर्थः ।

(मङ्गल गान-वाद्य के बाद सूत्रधार आता है ।)

सूत्रधार—क्यों आज उषाकाल में घर से बाहर होते ही मेरी आँखें भूख के

बुभुक्खाए पुक्खरपत्तपडिदजलबिन्दू विअ चञ्चलाअन्ति विअ मे अक्खीणि । (परिक्रम्य) जाव गेहं गच्छिअ जाणामि किण्णु खु सविधा विहिदा ण वेत्ति । (परिक्रम्य) एदं अम्हाणं गेहं । जाव पविसामि । (प्रविश्यावलोक्य) जह लोहीपरिवट्टणकालसारा भूमी, णेउब्भामणसुगन्धो विअ गन्धो, सुणिमित्तं विअ परिब्भमन्तो वडिवरसअजणो, किण्णु खु सविधा विहिदा । आदु बुभुक्खाए ओलणमथ्यं विअ जीवलोअ पेक्खामि । जाव अय्या सद्दावेमि । अय्ये ! इदो दाव । [किन्तु खल्वय प्रत्यूष एव गेहाधिक्रान्तस्य बुभुक्षया पुष्करपत्रपतितजलबिन्दू इव चञ्चलायेते इव मेऽक्षिणी । यावद् गेहं गत्वा जानामि किन्तु खलु सविधा विहिता न वेति । एतदस्माकं गेहम् । यावत् प्रविशामि । यथा लोहीपरिवर्तनकालसारा भूमि, स्नेहोद्भावनसुगन्ध इव गन्ध, सुनिमित्तमिव परिभ्रमन् वरिवस्यकजन, किन्तु खलु सविधा विहिता ।

प्रत्यूष एव = उषःकाले एव । अक्षिणी = लोचने, बुभुक्षया = क्षुधया । पुष्करपत्रपतितजलबिन्दू इव—पुष्करस्य = कमलस्य पत्रम् तत्र पतितौ इति पुष्करपत्रपतितौ जलबिन्दू इव इत्यर्थ । गेह = भवनम् , गत्वा = प्रविश्य, सविधा = भक्षणव्यवस्था, लोहीपरिवर्तनकालसारा—'लोही' इति पदेन लोहनिर्मितरन्धनदण्ड आक्षिप्यते, अतो लोह्या परिवर्तनन = अवघर्षणेन हेतुना कालसारा = कालीव कृष्णवर्णा इत्यर्थ । स्नेहोद्भावनसुगन्ध —स्नेहस्य = घृतादिस्नेहयुक्तपदार्थस्य उद्भावनम् = उद्गमनम् इति स्नेहोद्भावनम् अर्थात् उद्भूतस्नेहस्तेन सुगन्ध इत्यर्थ । सुनिमित्तम् = शोभन निमित्त, सुन्दर कारण वा परिवस्यकजन —वरिवस् इति अव्ययपदम् 'शुश्रूषा, पूजा' इति अर्थो भवति, वरिवस्यकजन = शुश्रूषकजन , मतानुष्ठापक , पूजकजनो वा इति भाव । सविधा विहिता=

कारण कमल के पत्ते पर पड़े हुए जल बिन्दु की भांति चंचल हो रही हैं । तब तक घर के अन्दर जाकर यह पता लगाता हूं कि खाने-पीने का कोई प्रबन्ध है या नहीं । यह रहा मेरा घर । तो प्रवेश करता हूं । (प्रवेश कर और चारों तरफ देख कर) लोहे के वर्तनों के बार-बार घर्षण करने से भूमि काली सी पड़ गई है, गन्ध ऐसी आरही है जैसे घृतादि स्नेह द्रव्यों की उद्भावना (छौंक) इन से उत्पन्न होती है । किसी मनोरम निमित्त के उद्देश्य से ही धार्मिक जन (इधर उधर) घूमते हुए दिखाई पड़रहे हैं । तब क्या कोई (भोजन की) व्यवस्था है

अथवा बुभुक्षयान्नमयमिव जीवलोकं पश्यामि । यावदार्यां शब्दापयामि । आर्ये ! इतस्तावत् ।]

(प्रविश्य)

नटी—अय्य ! इअ म्हि । अय्य ! दिट्ठिआ तु सि आअदो । [आर्य ! इयमस्मि । आर्य ! दिष्ट्या त्वमस्यागतः ।]

सूत्रधार—अय्ये ! किं अत्थि अम्हाणं गेहे को वि पादरासो । [आर्ये ! किमस्त्यस्माकं गेहे कोऽपि प्रातराशः ।]

नटी—अत्थि । [अस्ति ।]

सूत्रधार—चिरं जीव । तव सोहणाणि भोअणाणि दन्तिआ होहि । [चिरं जीव । तव शोभनानि भोजनानि दात्री भव ।]

नटी—अय्य ! तुमं ज्जेव पडिवालन्ती चिट्ठामि । [आर्य ! त्वामेव प्रतिपालयन्ती तिष्ठामि ।]

भोजनव्यवस्था कृता इत्यर्थः । जीवलोकम् = समग्रं जगत् इत्यर्थः । अन्नमयमिव = सिद्धान्नमयमिव शब्दापयामि = शब्देन आह्वयामि इत्यर्थः ।

प्रातराशः—प्रातः = प्रातःकाले अश्यते = भोज्यते इति प्रातराशः—कर्मणि घञ् प्रभातभोजनम् (नाश्ता) इति लोकभाषायाम् ।

अथवा क्षुधा के कारण ही मैं इस संसार के सब पदार्थों को अन्नमय देख रहा हूँ । तब तक आर्या को बुलाता हूँ । आर्ये ! यहाँ आओ ।

(प्रवेश कर)

नटी—आर्य ! मैं यहाँ हूँ । आर्य सौभाग्य से आप भी आ गए ।
सूत्र—आर्ये ! क्या घर में कोई कलेवा की व्यवस्था है ?
नटी—है ।
सूत्र०—तुम चिरजीवी हो और इसी तरह सुन्दर भोजन देती रहो ।
नटी—आर्य ! मैं तो बैठी आप की ही प्रतीक्षा कर रही हूँ ।

सूत्रधार—अय्ये ! किं अत्थि अब्भत्थिदं । [आर्ये ! किमस्त्यभ्यर्थितम् ।]

नटी—अत्थि । [अस्ति ।]

सूत्रधार—एव्वं देवा तुम अस्सासअन्तु । अय्ये ! किं किं । [एवं देवास्त्वामाश्वासयन्तु । आर्ये ! किं किम् ।]

नटी—घिदं गुलं दहि तण्डुला अ सव्वं अत्थि । [घृतं गुडो दधि तण्डुलाश्च सर्वमस्ति ।]

सूत्रधार—एद सव्व अम्हाण गेहे अत्थि । [एतत् सर्वमस्माकं गेहेऽस्ति ।]

नटी—णहि णहि । अन्तलावणे । [नहि नहि । अन्तरापणे ।]

सूत्रधार—(सरोषम्) आ अणय्ये ! एव्व दे आसा छिज्जीअदु अभाव च गमिस्ससि । अहं चण्डप्पवादलङ्घिओ विअ वरण्डो पव्वदाद् दूर आरोविअ पाडिदो म्हि । [आ अनार्ये ! एवं ते आशा छिद्यताम् अभावं च गमिष्यसि । अहं चण्डप्रवातलङ्घित इव वरण्डः पर्वताद् दूरमारोप्य पातितोऽस्मि ।]

अभ्यर्थितम् = प्रार्थितम् वस्तु इति भावः । एवम् = अनेन प्रकारेण, ते = तव आशा = अभिलाषः, छिद्यताम् = भज्यताम्, अभावम् गमिष्यसि = अभिलषित-वस्तुनाशं प्राप्स्यसि इत्यर्थः । चण्डप्रवातलङ्घितः—चण्ड = उद्वेगकरः प्रवातः = वायुः तेन लङ्घितः = उत्क्षिप्त इत्यर्थः । वरण्डः = तृणसमूह इत्यर्थः । पर्व-

---

सूत्र०—आर्ये ! तब कौन सी प्रार्थित वस्तु है ?

नटी—है ।

सूत्र०—यदि ऐसा है तो देवता तुम्हें आश्वासन दें । आर्ये ! क्या क्या (भोज्यवस्तु) है ?

नटी—घी, गुड़, दही और चावल हैं ।

सूत्र०—क्या ये सब हमारे घर में ही हैं ?

नटी—नहीं-नहीं, बाजार में हैं ।

सूत्र०—(क्रोधित होकर) आह अनार्ये ! यदि ऐसा है तो तुम्हारी भी आशा भङ्ग हो जाय, और तुम भी अभावग्रस्त हो जाओ । मैं प्रचण्डवायु के द्वारा

नटी—मा भाआहि मा भाआहि । मुहुत्तअं पडिवालेदु अज्जो । सव्वं सज्जं भविस्सदि । लद्धं णाम एदं । अज्ज मम उववासस्स अज्जो सहायो होदु । [मा बिभीहि मा बिभीहि । मुहूर्तं प्रतिपालयत्वार्यः । सर्वं सज्जं भविष्यति । लब्धं नामैतत् । अद्य ममोपवासस्यार्यः सहायो भवतु ।]

सूत्रधार—किंणामहेओ अज्जाए उववासो । [किंनामधेय आर्याया उपवासः ।]

नटी—अभिरूववदी णाम । [अभिरूपपतिर्नाम ।]

सूत्रधार—किं अण्णजाणीए । [किमन्यजात्याम् ।]

नटी—आम । [आम् ।]

सूत्रधार—सव्वं दाव चिट्ठदु । को उण दाणिं अज्जाए उववासस्स उवदेसिओ । [सर्वं तावत् तिष्ठतु । क इदानीमार्याया उपवासस्योपदेशिकः ।]

तान् = मम मनोरथान् स्थानाच्चेति वा पातित = भ्रंशित (एवमेव त्वयाऽपि भोजनस्याशां दत्त्वा निराशः कृत इति आशय)।

अभिरूपपतिर्नाम—अभिरूप = सुन्दर पतिर्यस्मात् वा तन्नामकमुपवासात्मकं व्रतम्, अनेन व्रतेन पतिः सुन्दरो भवतीति भाव ।

अन्यजात्याम्—अन्या जाति (= जन्म) तस्याम् इत्यर्थ ।

उत्क्षिप्त तृण-समूह की भाँति पर्वत से भी दूर उछालकर नीचे गिरा दिया गया हूँ। (अर्थात् जैसे तृण समूह तूफानी हवा के द्वारा पर्वत से भी ऊँचे फेंक दिया जाता है और क्रमशः नीचे गिर जाता है वैसे ही मेरी (भोजनसम्बन्धी) आशाएँ पहले तो ऊँचे से ऊँचे कल्पना में डूबी रहीं फिर बाद में निराशा से चकनाचूर हो गई।)

नटी—आर्य एवं भयभीत न हों। क्षणभर आप प्रतीक्षा करें। सब कुछ प्रस्तुत होगा। सब कुछ मौजूद है। आज मेरे उपवास के आप सहायक बनें।

सूत्रधार—आर्या के उपवास का नाम क्या है?

नटी—अभिरूप पति नाम है।

सूत्र—क्या अन्य जन्म में भी है?

नटी—हाँ।

सूत्र—अच्छा यह सब रहने दो। इस समय आर्या के उपवास का उपदेशक कौन है?

नटी—इमिणा वरिवस्सएण चुण्णगोट्ठेण । [अनेन वरिवस्यकेन चूर्णगोष्ठेन ।]

सूत्रधार—साहु चुण्णगोट्ठ ! साहु । [साधु चूर्णगोष्ठ ! साधु ।]

नटी—जइ अय्यस्स अणुग्गहो, तदो इच्छेम्ह अम्हारिसजणजोग्गं कञ्चि बम्हण णिमन्तेदु । [यद्यार्यस्यानुग्रह, तत इच्छेयमस्मादृशजनयोग्य कञ्चिद् ब्राह्मण निमन्त्रयितुम् ।]

सूत्रधार—धम्मिट्ठो खु णिओओ । तेण पादरासो वि मे भविस्सदि । जइ एव्व, पविसदु अय्या । अह वि अम्हारिसजणजोग्गं कञ्चि बम्हण अण्णेसामि । [धर्मिष्ठ खलु नियोग । तेन प्रातराशोऽपि मे भविष्यति । यद्येव प्रविशत्वार्या । अहमप्यस्मादृशजनयोग्य कञ्चिद् ब्राह्मणमन्वेषे ।]

नटी—ज अय्यो आणवेदि । (निष्क्रान्त) [यदार्य आज्ञापयति ।]

सूत्रधार—कहि णु खु दरिद्दबम्हण लभेअ । (विलोक्य) एसो अय्यचारुदत्तस्स वअस्सो अय्यमेत्तेओ णाम बम्हणो इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवणिमन्तेमि । (परिक्रम्य) अय्य ! णिमन्तिदो सि । आमन्तणस्स मा दरिद्द त्ति म अवमण्णेहि । सम्पण्ण अह्निहव्व भविस्सदि । धिद

वरिवस्यकेन—वरिवस्यक = देवभक्त, व्रतधारको वा तेन ।

नटी—इसी वरिवस्यक (धार्मिक) चूर्णगोष्ठकने मुझे ऐसा उपदेश दिया है।

सूत्र०—साधु चूर्णगोष्ठक, साधु ।

नटी—यदि आर्य की अनुकम्पा हो, तो मैं चाहूँगी कि अपने योग्य किसी ब्राह्मण को निमन्त्रित करें ।

सूत्र०—यह अत्यन्त धर्मसङ्गत कार्य एव सङ्कल्प है। इस तरह से मेरा प्रात कालीन भोजन भी उपलब्ध होगा । तब तुम (घर के अन्दर) जाओ । मैं भी अपने योग्य किसी ब्राह्मण की खोज करता हूँ ।

नटी—जो आर्य की आज्ञा हो । (निकल जाती है ।)

सूत्र०—कहाँ से दरिद्र ब्राह्मण पाऊँगा ? (चारों ओर देखकर) यह चारुदत्त का समवयस्क आर्य मैत्रेय-नामधारी ब्राह्मण इधर ही आरहा है। तब तक (एक ही को) निमन्त्रित करता हूँ । (घूमकर) आर्य ! आपको निमन्त्रण देता हूँ । निमन्त्रण का परित्याग न करें तथा मुझे दरिद्र जानकर अपमानित भी

गुल नहिं तण्डुला अ सव्व अत्थि । अधिअ दक्खिणामासआणि भविस्सन्ति । [कृत न्तु गच्छतु दरिद्रब्राह्मण ग्वेषय । ग्य ग्रायचारुदत्तस्य वयस्य ग्रायमैत्रेय। नाम ब्राह्मण न समागच्छति । यावदुपनिमन्त्रयामि । ग्राय ! निमन्त्रितोऽसि । ग्रामन्त्रणस्य मा त्यरिष्ट इति मामवमन्यस्व । मम्यममशितम्य भविष्यति। घृत गुडा दधि तण्डुलाच सवमस्ति । ग्रपि च दक्षिणामापका भविष्यन्ति ।]

(नपथ्य)

अण्ण अण्ण णिमन्तदु भाव भव। अरित्तआ भाव अहं । [ग्रन्य ग्रन्य निमन्त्रयतु तावद् भवान । ग्ररिक्तलावस्थम् ।]

सूत्रधार —

घिदगुलदहितुन्तमिद्ध घुविमसुग्रायद्वनसम्मिण्ण ।
सक्कारदत्तमिद्ध भुञ्जीमदु भत्तमव्येण ॥ १ ॥

मानतान्तर प्राप्तश्रेण्या न्य न्यमम दक्षिमाहल्येन नारे व्यवह्रियते ग्रत ग्राह—दक्षिणामापका = दक्षिणारूपा मापका = मुद्रा कापापणविशेषा भविष्यन्तीत्याशय ।

नपथ्य = वशपरिग्रहस्थान ग्रन्तजवनिकामाहुर्नेपथ्यम् । कश्चित्तु भर्त्तिर्नाकारान्तराधन नपथ्य रङ्गमित्यममाहु ।

ग्ररिक्तक = ग्रमावरहित ग्रदरिद्रो वा ग्रयात् ग्रार्यचारुदत्त दरिद्र परिज्ञाय मामपि न तथा म यन्तव्यागत ।

न करें। मेरे कुछ भोज्यवस्तु उपलब्ध होगी । घी, गुड दधि और चावल सब कुछ (मेरे घर) है तथा दक्षिणा के निमित्त मापक मुद्रा (=सोने की गिन्नी या सिक्का) भी प्रस्तुत की जायगी ।

(नेपथ्य में)

तब तक किसी दूसरे को निमन्त्रित करें । मैं अभावग्रस्त या दरिद्र नहीं हूं ।
मत्र घी गुड एवं दधि म सुसंस्कृत सुगन्धित द्रव्य से सुवासित, व्यंजन

नटी—एदिणा परिवस्सएण चुण्णगोट्ठेण । [अनेन परिव्राजकेन चूर्णगोष्ठेन ।]

सूत्रधारः—साहु चुण्णगोट्ठ ! साहु । [साधु चूर्णगोष्ठ ! साधु ।]

नटी— जइ अय्यस्स अणुग्गहो, तदो इच्छेमि अम्हारिसजणजोग्गं कंपि बम्हणं णिमन्तेदुं । [यद्यार्यस्यानुग्रहः, तत इच्छाम्यस्मादृशजनयोग्यं कमपि ब्राह्मणं निमन्त्रयितुम् ।]

सूत्रधारः धम्मिट्ठो क्खु णिओओ । तेण पादरासो वि मे भविस्सदि । जाहि एवं, पविसदु अय्या । अहं वि अम्हारिसजणजोग्गं कंपि बम्हणं अण्णेसामि । [धर्मिष्ठः खलु नियोगः । तेन प्रातराशोऽपि भविष्यति । याहि, प्रविशत्वार्या । अहमप्यस्मादृशजनयोग्यं कमपि ब्राह्मणमन्वेषे ।]

नटी— जं अय्यो आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यदार्य आज्ञापयति ।]

सूत्रधारः—कहिं णु क्खु दरिद्दबम्हणं लभेय्यं । (विलोक्य) एसो अय्यचारुदत्तस्स वअस्सो अय्यमेत्तेओ णाम बम्हणो इदो एव्व आअच्छदि । जाव णं णिमन्तेमि । (परिक्रम्य) अय्य ! णिमन्तिदो सि । आमन्तणस्स मा दरिद्द त्ति मं अवमण्णेहि । सम्पण्णं अहिदक्खं भविस्सदि । किं

परिवस्सएण -परिव्राजक = देवभक्त, धार्मिक या जैन ।

नटी— इसी परिव्राजक (धार्मिक) चूर्णगोष्ठ ने मुझे ऐसा उपदेश दिया है।
सूत्र०—साधु चूर्णगोष्ठ, साधु ।

नटी—यदि आर्य की अनुकम्पा हो, तो मैं चाहूँगी कि अपने योग्य किसी ब्राह्मण को निमन्त्रित करें ।

सूत्र० यह अत्यन्त धर्मसङ्गत कार्य एवं सङ्कल्प है। इस तरह से मेरा प्रातःकालीन भोजन भी उपलब्ध होगा। तब तुम (घर के अन्दर) जाओ। मैं भी अपने योग्य किसी ब्राह्मण की खोज करता हूँ।

नटी—जो आर्य की आज्ञा हो। (निकल जाती है।)

सू०— कहाँ से दरिद्र ब्राह्मण पाऊँगा ? (चारों ओर देखकर) यह चारुदत्त का समवयस्क आर्य मैत्रेय नामधारी ब्राह्मण इधर ही आरहा है। तब तक (इसी को) निमन्त्रित करता हूँ। (घूमकर) आर्य ! आपको निमन्त्रण देता हूँ। निमन्त्रण का परित्याग न करें तथा मुझे दरिद्र जानकर अपमानित भी

गुल न्हिं तण्डुला अ मव्व अत्थि । अविअ दक्खिणामासआणि भविस्सन्ति । [कृत नु खलु दरिद्रब्राह्मण लभेय । एष आर्यचारुदत्तस्य वयस्य आर्यमैत्रेयो नाम ब्राह्मण इत एवागच्छति । यावदुपनिमन्त्रयामि । आर्य ! निमन्त्रितोऽसि । आमन्त्रणस्य मा दरिद्र इति मामवमन्यस्व । सम्पन्नमशितव्य भविष्यति । घृत गुडो दधि तण्डुलाश्च सर्वमस्ति । अपि च दक्षिणामाषका भविष्यन्ति ।]

(नपथ्य)

अण्ण अण्ण णिम तदु भाव मव । अरित्तओ दाव अह । [अन्य मन्य निमन्त्रयतु तावद् भवान् । अरिक्तस्तावदहम् ।]

सूत्रधार —

घिद्गुलदहिसुत्तमिस्स घूयिमसूयोवक्सम्मिणण ।
सक्कारदत्तमिट्ठ भुञ्जीभदु भत्तमण्णेण ॥ १ ॥

भानना तर ब्राह्मणेभ्यो यम द्रव्यमय दक्षिणाशब्देन लोके व्यवह्रियते अत आह—दक्षिणामाषका = दक्षिणारूपा माषका = सुवर्ण कार्षापणविशेषा भविष्यन्तीत्याशय ।

नपथ्य = वेशपरिग्रहस्थान अन्तर्यवनिकामाहुर्नेपथ्यम् । केचित्तु मेदिनीकारानुरोधेन नेपथ्य रङ्गमित्ययमाहु ।

अरिक्त = अभावरहित अदरिद्रो वा अर्थात् आर्यचारुदत्त दरिद्र परिज्ञाय मामपि न तथा मन्यस्वेत्याशय ।

न करें । सब कुछ भोज्यवस्तु उपलब्ध होगी । घी गुड, दधि और चावल सब कुछ (मेरे घर) है तथा दक्षिणा के निमित्त माषक मुद्रा (=सोने की गिन्नी या सिक्का) भी प्रस्तुत की जायगी ।

(नेपथ्य में)

तब तक किसी दूसरे को निमन्त्रित करें । मैं अभावग्रस्त या दरिद्र नहीं हूं ।

मन्त्र घी गुड एव दधि से सुसंस्कृत, सुगन्धित द्रव्य से सुवासित व्यजन

विदूषक—अण्णं अण्णं णिमन्तेदु दाव भवं । अरित्तओ भव अहं । ण भणामि अहं अरित्तओ त्ति । किं भणासि—सम्पण्णं असणं अह्निदव्वं भविस्सदि त्ति । अहं पुण जाणामि । अहिअमहुरस्स अम्बस्स अन्तो गदाए अट्ठि ण भक्खीअदि त्ति । किं दाणि मं उल्लालिअ उल्लालिअ भणासि । भणामि पावुदो त्ति । किं भणासि—दक्खिणामासआणि भविस्सदि त्ति । एसो घाआ पच्चाचक्खिदो हिअएण अणुबन्धीअमाणो गच्छीअदि । अहो अच्चाहिदं । अहं वि णाम परस्स आमन्तणाणि सिक्खेमि । जो अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स गहे अहोरत्तपअत्तसिद्धेहिं णाणाविधेहिं हिअग्गुविवेहिं ओग्गारणसुगन्धेहिं मूलखेअमत्तपडिच्छिदेहिं अन्तरन्तरपाणीएहिं अमणप्पआरेहिं चित्तअरो विअ मल्लअमज्झगदो परिवुदो आअण्ठमत्त अह्निअ चच्चरवुसहो विअ मोल्लअजअणएहिं रोमन्थाअमाणो दिवसं खवेमि, सो एव्व दाणि अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स दलिद्ददाए समं पारावदेहिं आहारणवुत्तिं उवजीवन्तो अण्णहिं चरिअ चरिअ तस्स आवासं एव्व गच्छामि । अण्णं च अन्तरिअ । मम उदरं अत्थाविसेसं जाणादि । अप्पेणावि तुस्सदि । बहुअं वि ओदणभरं भरिस्सदि दीअमाणं । ण आअदि अदीअमाणं, ण पच्चाचिक्खदि । ण खु अहं एदिसेण ण सन्तुट्ठो । ता सट्ठीकिन्देवकज्जस्स तत्तहोदो चारुदत्तस्स कारणादो गहीदो सुमणो अन्तलिक्खवासो अ । जाव से पस्सपरिवत्ती होमि । (परिक्रम्यावलोक्य) एसो तत्तभवं चारुदत्तो पभादच्चणदो णिअ सकरुणपिअदंसणो जहाविभवेण गिहदेवदाणि अच्चअन्तो इदो एव्व आअच्छदि । जाव ण उवसप्पामि । (निष्क्रान्तः ।) [अन्यमन्यं निमन्त्रयतु तावद् भवान् । अरिक्तस्तावदहम् । ननु भणाम्यहमरिक्त इति । किं भणसि—सम्पन्नमशनमशितव्यं भविष्यतीति । अहं पुनर्जानामि । अधिकमधुरस्य

अरिक्तक = धनादिसंपन्नः नेपथ्ये पुनराह्वानं श्रुत्वा इव विदूषकः कथयति किं भणसि—सम्पन्नम् = सुपक्वम् अशनम् = भोजनम् अशितव्यम् = भक्षणीयम् तदार्थे भविष्यति । आम्रस्य = आम्रफलस्य अस्थि = बीजकोष

विदूषक—तब तक किसी दूसरे को निमन्त्रित करें । मैं सवसम्पन्न हूँ । निश्चय पूवक कहता हूँ कि मैं सवसम्पन्न हूँ । क्या कहते हो, सब कुछ स्वादयुक्त

आत्रस्य अयोग्यतया अस्थि न भक्षत इति । किमिदानीं मामुल्लाप्योल्लाप्य भणसि । भणामि व्यापृत इति । किं भणसि—दक्षिणा मापका भविष्यन्तीति । एव वाचा प्रत्याख्यातो हृदयेनानुवध्यमानो गम्यते । अहो अत्याहितम् । अहमपि नाम परस्यामन्त्रणानीति तर्कयामि । योऽहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य गेहेऽहोरात्रपर्याप्तसिद्धैर्नानाविधैर्हिङ्गुविद्धैरुद्गारसुगन्धिभिः अक्षेपमात्रप्रतीष्टैरन्तरान्तरपानीयैरशन-

(पुरुषी) इति लोके प्रसिद्ध. अयोग्यतया = भक्षणायोग्यतयेत्यर्थ, उल्लाप्य उल्लाप्य = उपच्छन्द्य (प्रलोभन दत्त्वा इति शेष) व्यापृत = कार्यान्तरे व्यस्त, अत एव विलम्बितु वा अन्यत्र गन्तु न समर्थोऽस्मि, (तेन हेतुना उक्त मया 'अन्यमन्य = अन्य ब्राह्मण, निमन्त्रयतु = भोजनार्थमानयतु तावद् भवान् इति शेष)। प्रत्याख्यात = निन्दित अस्वीकृतो वा, अनुवध्यमान = अनुसियमाण', गम्यते = गन्तुमिष्यते इत्यर्थ । अहो अत्याहितम् = दुर्भाग्य दुर्घटन वा आपतितम् । तत्रभवत = मान्यस्य, अहोरात्रम् = दिवानिशम् , पर्याप्तसिद्धं = पर्याप्तरूपेण पक्के, हिङ्गुविद्धैं—हिंगुना विद्धै = मिश्रितै, उद्गारसुगन्धिभि = उद्गारकाले मनोरमगन्धयुक्तै, अक्षेपमात्रप्रतीष्टै—अक्षालनमात्रेण प्रतीष्टैं = उपस्थितै आनीतै, अन्तरान्तरपानीयै—अन्तरे अन्तरे प्रत्येकभोजनमध्यकाले

नहीं खाता। अर्थात् मैं भी चारुदत्त के घर अतिमधुर पदार्थ खा चुका हूँ। अब उनकी अपेक्षा हीन अन्न के भक्षादि को खाना नहीं चाहता। फिर भी आप मुझे ही फुसलाकर या लोभ दिखाकर क्यों कहते हैं ? मैं दूसरे कार्य में लगा हूँ। क्या कहते हो, दक्षिणा स्वरूप मुद्रा भी है ? यह केवल वाणी से ही प्रत्याख्यान किया गया है पर हृदय से तो सर्वथा अनुमोदन किया गया है। अहो ! यह क्या हुआ ? मैं भी दूसरे के आमन्त्रण की कल्पना करता हूँ। एक समय था जब कि मैं बहुविध वर्णों (रङ्गों) से सुसज्जित पात्रों से घिरे हुए चित्रकार की भाँति आर्य चारुदत्त के घरमें रात दिन पर्याप्त रूप से पके हुए नानाविध हिङ्गुवासित पदार्थों से मिश्रित एवं सुगन्धित डकार (उद्गार) लाने वाले, आँखों के सकेत पर ही प्रस्तुत हो जाने वाले एवं भोजन के समय में पीने योग्य तथा अनेक प्रकार के विशिष्ट भोज्य पदार्थों से घिरा हुआ मैं आवश्यकता से अधिक खाकर आँगन के बैल की तरह मोदक खाद्यों से पागुरी करते हुए सारा दिन व्यतीत कर देता था, वहीं मैं इस समय पूज्य चारुदत्त की दरिद्रता के कारण कबूतरों के साथ साधारण वृत्ति का वहन करते हुए अन्य जगह चर कर (अर्थात् भक्षणार्थ नाना स्थान को जाकर) पुन उन्हीं के निवास स्थान को (लौट) जाता हूँ।

प्रकारैश्चित्रकर इव बहुमल्लकैः परिवृतः आकण्ठमाकण्ठमशित्वा चत्वरवृषभ इव मोदकखाद्यं रोमन्थायमानो दिवसं क्षिपामि स एवेदानीमहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य दरिद्रतया समं पारावतैः साधारणवृत्तिमुपजीवन् अन्यत्र चरित्वा चरित्वा तस्यावासमेव गच्छामि । अन्यच्चाश्चर्यम् । ममोदरमवस्थाविशेषं जानाति । अदेनापि तुष्यति । बहुकमप्योदनभरं भरिष्यति दीयमानम् । न याचते अदीयमानं न प्रत्याचष्टे । न खल्वहमीदृशेन न सन्तुष्टः । तत् षष्ठीकृतदेवकार्यस्य तत्रभवतश्चारुदत्तस्य कारणाद् गृहीतानि सुमनसोऽन्तरीयवासश्च । यावदस्य पार्श्वपरिवर्ती भवामि । एष तत्रभवांश्चारुदत्तः प्रभातचन्द्र इव सकरुणप्रियदर्शनो यथाविभवेन गृहदेवता अर्चयन् इत एवागच्छति । यावदेनमुपसर्पामि ।]

पानीयम् = मध्यकालीनपानीयम् मधु च । भोजनप्रकारैः = भोजनप्रकारैः बहुमल्लकैः = बहुभाजनैः । आकण्ठम् = कण्ठपर्यन्तम् । चत्वरवृषभ इव = चत्वरस्थमुत्सृष्टं वृषभ इव । रोमन्थायमानः = चर्वितस्य पुनरपि चर्वणं कुर्वन् सन् । दिवसं क्षिपामि = कालक्षेपं करोमि । अवस्थाविशेषम् = वर्तमानावस्थां दारिद्र्यमित्यर्थः । षष्ठीकृतदेवकार्यस्य—षष्ठ्याम् = षष्ठीतिथौ कृतम् देवकार्यं येन तस्य (चारुदत्तस्येति शेषः) । अन्तरीयवासः = परिधानवस्त्रम् । सकरुणप्रियदर्शनः—सकरुणश्चासौ प्रियदर्शनश्च इति सकरुणप्रियदर्शनः एवम्भूतः चारुदत्तः इत एव आगच्छतीति भावः ।

भोजन उपलब्ध होता ? मैं सब कुछ जानता हूँ (अर्थात् इन सब से मैं संतक हूँ)। अत्यन्त मधुर आम के उपलब्ध न होने पर उसकी गुठली कोई दूसरा आशय यह है कि मेरा उदर (पेट) अवस्था-विशेष को जानता है, जो थोड़े में ही सन्तुष्ट हो जाता है। यदि देने वाले हों तो अधिक से अधिक अन्न को ग्रहण करता है। न देने वाले से नहीं माँगता और न उसकी निन्दा ही करता है। इस प्रकार के अवस्था-विशेष से मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ ऐसा नहीं है अपितु सन्तुष्ट हूँ। इस सन्तोष के कारण षष्ठी तिथि पर देव कार्य को सम्पादन करने वाले मान्य चारुदत्त के निमित्त पुष्प एवं परिधेय (पहनने योग्य) वस्त्र लाया हूँ। तब तक इनके समीप जाता हूँ। (घूम कर और देख कर) यह मान्य चारुदत्त इधर ही आ रहे हैं। ये प्रातःकालीन चन्द्रमा की भाँति सुन्दर एवं मलिन दिखाई पड़ रहे हैं। विभव के अनुसार गृह के देवताओं की अर्चना करते हुए इधर ही आ रहे हैं। तब तक मैं भी इनके समीप जाता हूँ।

(तत प्रविशति वलिमुपहरन्नायको विदूषकश्चङ्गेरिकाहस्ता चेटी च ।)

नायक —(दीर्घं नि श्वस्य) भोः । दारिद्र्यं खलु नाम मनस्विनः पुरुषस्य सोच्छ्वासं मरणम् । कुत ,

यासां वलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विभक्तपुष्प.[१] ।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु

तत इति—वलिम्=पूजाद्रव्यम् , उपहरन्=गृह्णन् , चङ्गेरिकाहस्ता—चङ्गेरिका = पुष्पाधारपात्रविशेष हस्ते यस्या सा एवभूता चेटी = दासी (रदनिका), विदूषक (मैत्रेय), नायक (चारुदत्तश्च) प्रविशतीति भाव ।

यासामिति । यासाम् मद्गृहदेहलीनाम् = मम गृहाणि मद्गृहाणि तेषां या देहल्य द्वारपिण्डिका बहिर्द्वारस्य काष्ठखण्डविशेषा तासा 'गृहावग्रहणी देहली' इत्यमर । अत्र लक्षणया देहलीसमीपस्य चत्वराणा 'बलि' तत्र प्रक्षिप्त प्रचुर यवधान्यादिबलि , अक्षतादिपूजोपहारो वा, हंसं = मरालं, च = पुन , सारस-गणैश्च = सारसाख्यपक्षिविशेषैश्च, विभक्तपुष्प —विभक्तानि पृथक् कृतानि पुष्पाणि यस्मिन वा यस्य तादृश , भवति = अभूदित्यर्थ । पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु—पूर्व बलि = पूजोपहार तस्मात रूढानि = उद्गतानि, इति पूर्वबलिरूढानि यवाङ्कुराणि

(निकल जाता है ।)

(इसके बाद पूजा द्रव्य लिए हुए नायक (चारुदत्त) विदूषक तथा चङ्गेरिक (चगेरी = फूल रखने की डलिया) हाथ में लिए हुई चेटी का प्रवेश)

नायक—(दीर्घ उच्छ्वास लेकर) ओ ! दरिद्रता (नि सन्देह) मनस्वी पुरुषों के लिये उच्छ्वास युक्त मरण है ।

क्योंकि—

हमारे गृह की जिन देहलियों पर बलि पडी रहा करती थी और जिसे हंस तथा सारस खाया करते थे , आज उसी देहली पर जहाँ पहले के बलि कर्म में

१. 'विमुक्तपूर्वं' इति पाठ समीचीन. ।

बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥ २ ॥

विदूषक —अलं दाणिं भवं अदिमत्तं सन्ताविदुं । पुरुसजोव्वणाणि विअ गिहजोव्वणाणि खु दसाविसेसं अणुहोन्ति । आसमुद्दआणविपण्ण विभवस्स बहुलपक्खचन्दस्स जोह्णापरिक्खओ विअ भवदो एव्व रमणीओ अअं दरिद्दभावो । [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्तुम् । पुरुषयौवनानीव गृहयौवनानि खलु दशाविशेषमनुभवन्ति । आसमुद्रदानविपन्न विभवस्य बहुलपक्षचन्द्रस्य ज्योत्स्नापरिक्षय इव भवत एव रमणीयोऽयं दरिद्रभावः ।]

नायक —न खल्वहं नष्टां श्रियमनुशोचामि । गुणरसज्ञस्य तु पुरुषस्य व्यसनं दारुणतरं मां प्रतिभाति । कुतः,

---

यासु तासु एव गृहवेहलीषु कीटमुखावलीढः —कीटानां मुखैः अवलीढः = खण्डितः अर्धभुक्तः इति वा बीजाञ्जलिः —बीजानां धान्यादिबीजानामञ्जलिः अर्थात् अञ्जलिपरिमितधान्यादि इत्यर्थः पतति अनेन अननुभूतपूर्वमिव दारिद्र्यदुःखम् ध्वनितं । अपरञ्च दयादात्र विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य चे'ति मार्कण्डेयपुराण वचनाद् गृहद्वारे बलिप्रदानवर्णनं भारतीयप्राचीनसभ्यतां सूचयति ॥ २ ॥

आसमुद्रदानविपन्नविभवस्य—आसमुद्रम् यथा स्यात् तथा दानम् तेन विपन्न =क्षीणभावयुक्तः एवंभूतः विभवः =धनम् यस्य तस्य बहुलपक्षचन्द्रस्य = कृष्णपक्षचन्द्रस्येत्यर्थः ।

गुणरसज्ञस्य—गुणश्च रसश्च इति गुणरसौ तौ जानातीति गुणरसज्ञः तस्य गुणरसज्ञस्य - अनुभूतविभवफलसारस्येत्यर्थः । व्यसनम् = दारिद्र्यम् ।

जिस पथ के अङ्कुर निकल आए हैं इन कीटों के द्वारा खण्डित (खाई हुई) बीजाञ्जलि पड़ी हुई है ॥ २ ॥

विदूषक—इस समय आपको अत्यन्त सन्ताप करना उचित नहीं है । पुरुष की युवावस्था की भाँति गृह का यौवन दशाविशेष को प्राप्त करता है । समुद्र पर्यन्त की सम्पत्ति को दान में विनष्ट करने वाले आपकी यह दरिद्रावस्था कृष्णपक्ष में क्षय हुये चन्द्रमा की कला की तरह रमणीय ही लगती है ।

नायक—मैं विनाश होने वाली सम्पदा की चिन्ता नहीं करता । योग्यता आदि गुण एवं कारुण्यादि रस के अनुभवी सहृदय पुरुष की विपत्ति मुझे असह्य प्रतीत होती है । क्योंकि—

एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्यं
सख्ये सखे ! न क्षयमभ्युपैति ॥ ४ ॥

(चिन्तां नाटयति ।)

विदूषक—किं भवं अत्थविभवं चिन्तेदि । [किं भवानर्थविभवं चिन्तयति ।]

नायक —

सत्यं न मे धनविनाशगता विचिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति ।
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रियो मे
यत् सौहृदानि सुजने शिथिलीभवन्ति ॥ ५ ॥

अपमानितम् नव स्मरामि । हे सखे ! एतत्तु प्रत्ययदत्तमूल्यम्—प्रत्ययम् = दान फलप्रदमिति विश्वासेन दत्तं मूल्यम्=धनं यत्र एतादृशं हट मे सत्त्वम् = मम मन सत्त्वसहकं मम इति यावत् । न क्षयम् अभ्युपैति=न कदापि क्षयं प्राप्नोति ॥४॥

सत्यमिति—सत्यमेव धनविनाशगता = वित्तध्वंसोत्पन्ना विचिन्ता = दुःख मे = मम नास्ति = न वर्तते कथमित्याशङ्कायामाह—हि = यतः भाग्यक्रमेण = भाग्यानुसारेण धनानि पुनर्भवन्ति = पुनरप्यायान्ति । तर्हि चिन्तायाः किं निमित्तमित्याह—एतदिति एतत्तु = एतदेव मां दहति = भृशं पीडयति दुःखाकरोति यत् नष्टधन श्रियः—नष्टा धनश्री = वैभवश्री यस्य एवंभूतस्य मे = मम सौहृदानि = सुहृन्मादयः मित्रवर्गा वा सुजने = मादृशे सुजने सत्यपि शिथिलीभवन्ति = अर्थे

(अन्य किसी भी याचक को) असन्तुष्ट नहीं किया । हे मित्र ! दान उत्तम कार्य है इसी विश्वास से सम्पूर्ण सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य को लुटा देने वाला सत्त्व शाली मेरा मन कभी भी क्षय भाव को नहीं प्राप्त होता ॥ ४ ॥

(चिन्ता युक्त अभिनय करता है ।)

विदूषक—क्या आप ऐश्वर्य की चिन्ता करते हैं ?

नायक—मित्र ! यह सत्य है कि मुझे धन के नाश की विशेष चिन्ता नहीं है । क्योंकि भाग्य के क्रम से धन पुनः हो जाते हैं । परन्तु यही तो मुझे विशेष कष्ट प्रतीत होता है कि निर्धन होने पर मेरे बन्धुवर्ग मेरे जैसे सुजन व्यक्ति में भी निरादर की भावना रखते हैं ॥ ५ ॥

अपि च—

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सत्त्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ।
निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृद स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ॥ ६ ॥

विदूषक—एदे दाणि दासीएपुत्ता अत्थवाआरा गोवजारआ विअ मसअभीदा गिहादो णिग्गच्छन्ति । धणविणासदुक्खस्स उण चिन्तिअ-

---

वैक्लव्यप्रयुक्तबन्धुतामपि त्यजन्ति, हतादराणि भवन्ति वा, एतदेव दु खाकरोति मामित्याशय ॥ ५ ॥

दारिद्र्यादिति—दारिद्र्यात् = धनाभावात्, पुरुषस्य = लोकस्य, वाक्ये बान्धवजन = सुहृज्जन, कुटुम्बवर्ग 'सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजना समा' इत्यमर । वाक्ये न सतिष्ठते = वचने न प्रत्येतीति भाव । 'समवप्रविभ्य स्थ' इत्यनेन सन्तिष्ठत इत्यत्रात्मनेपदम् । सत्त्वम् = बलम्, मनस्विता वा हास्यम्=हासविषयम् उपैति=प्राप्नोति, शीलशशिन = चारित्र्यचन्द्रस्य, कान्ति = दीप्ति शरीरसौन्दर्यम्, वा, परिम्लायते = सर्वतो ग्लानिं, म्लान वा गच्छति । निर्वैरा = अत्यनुरक्ता, सुहृद = मित्राणि, विमुखीभवन्ति = प्रातिकूल्यमाचरन्ति, दरिद्र प्रति न गच्छन्ति कार्याभावात् वा (दरिद्रपुरुषस्य), आपद = विपत्तय, स्फीता = विशाला, बहुला वा, भवन्ति = जायन्ते, यत् पाप कर्म = निन्दित कर्म, चौर्यादिकमिति यावत् । परै =सामान्यजनै अपि, कृतम्—आचरितम् भवेत् तत् कर्म = पापजनक कुत्सित कर्म, तस्य = दरिद्रपुरुषस्य, सभाव्यते = अनुमीयते अर्थाभावात् इदमनेनैव कृतमिति जनै निर्णीयत इति भाव ॥ ६ ॥

और भी—

दरिद्रता के कारण, पुरुष का कुटुम्ब व बन्धुवर्ग वाणी में आस्था नहीं रखता, मनस्विता हास्य का विषय बन जाती है, शीलयुक्त (पुरुष) की कान्ति भी मलिन हो जाती है। बिना शत्रुता के ही मित्रलोग विमुख हो जाते हैं, आपत्तियाँ बड़ी हो जाती है और जो पाप कर्म साधारण जन के द्वारा घटित होता है, उसे भी दरिद्रता (अर्थाभाव) के कारण लोग उसीका किया हुआ मानने लगते हैं॥६॥

विदूषक—इस समय ये कम्बख्त रुपया-पैसा, मशक (मच्छड़) से भयभीत गड़ेरियों के बच्चों की तरह अपने घर से बाहर निकलते हैं। वसन्त ऋतु में सरकण्डे

माणस्स वसन्ते वुड्ढस्स सरत्थम्बस्स विअ अङ्कुरङ्कुरा उब्भमन्ति । ता अलं भवदो सन्दावेण । [एत इदानीं दास्याः पुत्रा अर्थकल्यवर्ता गोपदारका इव मशकभीता गृहाद् निर्गच्छन्ति । धनविनाशदुःखस्य पुनश्चिन्त्यमानस्य वसन्ते वृद्धस्य शरत्तम्बस्येवाऽङ्कुराङ्कुरा उद्भ्रमन्ति । तदलं भवतः सन्तापेन ।]

नायकः—वयस्य ! किमर्थं सन्तापं करिष्ये । किञ्चाहं दरिद्रः, यस्य मम,

विभवानुवशा भार्या समदुःखसुखो भवान् ।
सत्त्वं च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥ ७ ॥

(यथा) वसन्ते = वसन्तमासे वृद्धस्य = परिपक्वस्य शरत्तम्बस्य = शरगुच्छस्य (शरपत' शरकम्बा' इति लोकभाषायाम्) अङ्कुराङ्कुरा —अङ्कुरात् अङ्कुरा उद्भ्रमन्ति = उत्पद्यन्ते निर्गच्छन्ति वा (तथैव) धनविनाशदुःखस्य चिन्त्यमानस्य (जनस्येति भाव) नानाविधाश्चिन्ताङ्कुरा उद्भ्रमन्ति = प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः ।

विभवेति । यस्य मम विभवानुवशा—प्रचुरविभववशात् सर्वदा अनुवशा= अनुकूलकार्यकारिणी भार्या = पत्नी अस्ति (तथा) समदुःखसुखः = सम्पत्तौ विपत्तौ च एकभाव इत्यर्थः भवान् = मैत्रेय (विदूषकः) अस्ति सत्त्वम् = मनः च न परिभ्रष्टम् । यत्=सत्त्वादित्रयम् दरिद्रेषु = अस्मादृशेषु भाग्यहीनेषु दुर्लभम्

के जैसे अकुरों में से अंकुर निकलते हैं वैसे ही धन विनाश से दुःखी एवं चिन्तित (व्यक्ति) को और भी नाना प्रकार की चिन्ता के अंकुर पैदा होते रहते हैं। इसलिये आपको सन्ताप नहीं करना चाहिए।

नायक—मित्र ! मैं क्यों धन के लिये सन्ताप करूं? क्या मैं दरिद्र हूँ? जिस मेरे—

विपुल विभव के कारण सर्वदा पास रहने वाली भार्या तथा सुख एवं दुःख में समान रूप से आप जैसे सहृदय बन्धु (मित्र) साथ हैं और सत्त्वशाली मन भी पथभ्रष्ट नहीं हुआ है जब कि ये तीनों दरिद्रावस्था में दुर्लभ हैं। (भावार्थ यह है कि चारुदत्त को ऐसी दशा में भी गुण ग्राहिणी पत्नी, सहृदय मित्र तथा सन्मार्गगामी मन का जब सान्निध्य उपलब्ध है तो वह सबसे धनवान है।) ॥ ७ ॥

(ततः प्रविशति गणिका सम्भ्रान्ता विटेन शकारेण चानुगम्यमाना ।)

शकार —चिट्ठ चिट्ठ वशन्तशेणिए ! चिट्ठ,

किं याशि धावशि पधावशि पक्खलन्ती
शाहु प्पशीद ण मलीअशि चिट्ठ दाव ।
कामेण शम्पदि हि उज्झइ मे शलीलं
अङ्गालमज्झपडिदे विअ चम्मखण्डे ॥ ८ ॥

[तिष्ठ तिष्ठ वसन्तसेने तिष्ठ,

किं यासि धावसि प्रधावसि प्रस्खलन्ती
साधु प्रसीद न मार्यसे तिष्ठ तावत् ।
कामेन सम्प्रति हि दह्यते मे शरीर-
मङ्गारमध्यपतितमिव चर्मखण्डम् ॥ ८ ॥]

अस्ति, अतः एतद्-दुर्लभत्रयसान्निध्यात् अहं सर्वसम्पन्नः अस्मि नाहं दरिद्र इत्याशयः ॥ ७ ॥

'तिष्ठ तिष्ठ' इति आवेगे द्विरुक्तम् ।

'शकारो राष्ट्रियः स्मृतः' इति वचनात्, शकारस्य भाषा राष्ट्रिया विज्ञेया । शकारः पलायनपरां वसन्तसेनामनुसरन् कथयति—किमिति—(त्वम्) प्रस्खलन्ती = स्खलितचरणा, किं = कथं यासि, धावसि, प्रधावसि=अति वेगं गच्छसीति भावः । साधु प्रसीद = मयि प्रसन्ना भव, न मार्यसे = नाहं त्वां हन्मीत्यर्थः, तिष्ठ = शीघ्रगमनात् विरता भव, तावदिति वाक्यालङ्कारे, किंवा यावत्कालं वयं ब्रूमः तावदिति कालनिर्देशः, अङ्गारमध्यपतितम् = प्रज्वलिताग्निमध्ये पतितम्

(तब विट और शकार से पीछा की गई सम्भ्रान्त एवं व्याकुल गणिका का प्रवेश ।)

शकार (= राजा का साला)—ठहरो, ठहरो वसन्तसेना, ठहरो ।

क्यों जा रही हो, (क्यों) दौड़ रही हो ? नीचे ऊँचे मार्ग में लड़खड़ाती हुई भी (अत्यन्त वेग से) दौड़ रही हो । मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ । ठहरो, मैं तुम्हें नहीं मारूंगा । इस समय मेरा शरीर आग में पड़े हुए चर्म खण्ड की तरह काम-रूपी अग्नि से जल रहा है ॥ ८ ॥

विट —वसन्तसेने !

किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या
नृत्तोपदेशविशदौ चरणौ क्षिपन्ती ।
उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टि
र्व्याघ्रानुसारचकिता हरिणीव यासि ॥ ९ ॥

शकारः—भावे ! एशा गच्छइ वशन्तशोणिआ,

चर्मखण्डमिव = मांसखण्डमिव सम्प्रति = अधुना हि मे = मम शरीरम् कामेन= मदनाग्निना दह्यते = सन्तप्यते पीड्यते इति भावः ॥ ८ ॥

मधुमन्थरगामिनीं वसन्तसेनां भीतिविह्वलतया द्रुतगामिनीमवलोक्य तदनुगामी विट आह—किमिति—त्वम् = वसन्तसेने भयेन = भीत्या परिवर्तितसौकुमार्या—परिवर्तितं = द्रुततमगमनाय परित्यक्तं सौकुमार्यं = गमनमृदुता मन्थरगमनमिति यावत् यया सा एवम्भूता सती नृत्तोपदेशविशदा—नृत्तस्य = भावाश्रयस्य इत्यर्थः 'भवेद् भावाश्रयं नृत्तं नृत्यं ताललयाश्रयम्' इति दशरूपके । उपदेशः = शिक्षणम् तत्र विशदौ=भूरिदक्षौ मिदाफिनर्तनादिकलाभिज्ञौ इति यावत् एतादृशौ चरणौ क्षिपन्ती = क्षिप्रं पातयन्ती वहन्ती वा (तथा) उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टि = उद्विग्नश्च = अत्यन्तव्यग्रश्च अतएव चञ्चलश्च = चपलश्च एतादृशः कटाक्षः = अपाङ्गदृष्टिः 'कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने' इत्यमरः । तेन निविष्टा एवम्भूता दृष्टिर्यस्याः सा तादृशी (सती) अर्थात् किंयद् दूरे पापिष्ठौ स्त इत्यानननीवद् परावृत्य तिर्यक् नयनेन समीक्षितमवलोक्य तीत्यभिप्रायः । व्याघ्रानुसारचकिता= व्याघ्रस्य अनुसारः = अनुगमनं पश्चाद्धावनं वा तेन चकिता = भयभीता चपला वा एवम्भूता हरिणी इव = मृगीव किं = कथं केन हेतुना वा यासि = गच्छसि । त्वं स्नेहमूत्रनिबद्धौ (विटशकारौ) दृष्ट्वा भीतिर्नैव विधेयेति भावः ॥ ९ ॥

विट—अयि वसन्तसेने !

तुम भय के कारण अपनी सुकुमार गति को परवर्तित करती [redacted] एवं नृत्त कला में दक्ष (दोनों) चरणों को रखती हुई उद्विग्न एवं चञ्चल कटाक्षों से हमारे ऊपर आघात करती [redacted] तथा व्याघ्र के द्वारा पीछा की गई अतएव डरी हुई हरिणी की तरह क्यों जा रही हो ? ॥ ९ ॥

शकार—भाव ! यह वसन्तसेना आ रही है।

दुवेहिं अम्हेहाणुबन्धअन्ती जह्वा शिगाली विअ कुक्कुलेहिं ।
शणूपुला मेहलणाद्दहाशा शवेट्टणं मे हलअं हलन्ती ॥ १० ॥

[भाव ! एषा गच्छति वसन्तसेना,

द्वाभ्यामावाभ्यामनुबध्यमाना यथा शृगालीव कुक्कुराभ्याम् ।
सनूपुरा मेखलानादहासा सवेष्टनं मे हृदयं हरन्ती ॥ १० ॥]

विट.—वसन्तसेने !

किं त्वं पदात् पदशतानि निवेशयन्ती
नागीव यासि पतगेन्द्रभयाभिभूता ।
वेगादहं प्रचलितः पवनोपमेयः

शकार इति—भाव !—भावयति चिन्तयति गूढतत्त्वमिति भावो विद्वान्, तत्सम्बोधने हे भाव ! = हे विद्वन्, 'भावो विद्वान्' इत्यमरः ।

द्वाभ्यामिति—द्वाभ्याम्=आवाभ्याम् (विटशकाराभ्याम्), अनुबध्यमाना= अनुगम्यमाना एषा वसन्तसेना कुक्कुराभ्याम् अनुगम्यमाना शृगालीव गच्छति = धावति (तथा) सनूपुरा = नूपुरेण सह वर्तमाना इत्यर्थः । मेखलानादहासा— मेखला = काञ्ची तस्या नादः = शब्दः स एव हासः = उद्गारः यस्याः सा एषा मे = मम, सवेष्टनम् = सावरणं नेत्रादिनिर्वर्णम्, आत्मसुखम् हृदयम् हरन्ती (गच्छति इति शेषः) ॥ १० ॥

तथापि वेगात्पलायमाना तां विलोक्य विटः पुनरपि वदति—किमिति—त्वम् पदात् = प्रथमपदात् शतपदानि निवेशयन्ती = पदशतस्थाने द्वितीयचरणं निक्षिपन्ती इति भावः, पतगेन्द्रभयाभिभूता—पतगानाम् इन्द्रः = श्रेष्ठः (गरुडः) तस्मात् भयम् तेन अभिभूता = आक्रान्ता नागीव = सर्पिणीव किम् = कथं यासि= गच्छसि ? । पवनोपमेयः = पवनेन तुल्यः अहम् वेगात् प्रचलितः अपि किं त्वा

इन दोनों से पीछा की गई यह वसन्तसेना, श्वान (कुत्तों) से पीछा की गई शृगाली की भाँति भाग रही है, तथा नूपुर के सहित मेखला (काञ्ची) के शब्द भावयुक्त मेरे हृदय (मन) को हरण कर रहे हैं ॥ १० ॥

विट—वसन्तसेना,

तुम क्यों गरुड़ के भय से त्रस्त नागिनि की तरह शीघ्र, एक पद में सैकड़ों पैर रखती हुई जा रही हो ? वायु के समान मैं शीघ्रता से चल कर क्या तुम्हें

किं त्वां ग्रहीतुमथवा न हि मेऽस्ति शक्तिः ॥ ११ ॥

गणिका—(समन्तादवलोक्य) पल्लवअ ! पल्लवअ ! परहुदिए ! परहुदिए ! महुअरअ ! महुअरअ ! सारिए ! सारिए ! हद्धि, णट्ठो मे परिजणो । एत्थ सअं एव अप्पा रक्खिदव्वो । [पल्लवक ! पल्लवक ! परभृतिके ! परभृतिके ! मधुकरक ! मधुकरक ! शारिके ! शारिके ! । [illegible] धिक् नष्टो मे परिजन । अत्र स्वयमेवात्मा रक्षितव्य ।]

शकार—विलव विलव णाए ! विलव पल्लव वा, परहुदिअं वा, महुअरं वा, शालिअं वा, शव्वं वशन्तमाशं वा ! के के तुमं परित्तइशि ।

किं वाशुदेवे शवपड्ढणेशे कुन्तीशुदे वा जणमेअए वा ।
अहं तुमं गहिअ केशहत्थे दुश्शाशणे वीदमिवाहलामि ॥ १२ ॥

[विलप विलप बाले ! विलप पल्लवं वा परभृतिकां वा मधुकरं वा शारिकां वा सर्वं वसन्तमासं वा । कः त्वां परित्रास्यते ।

कि वासुदेवः शवपतनेशः कुन्तीसुतो वा जनमेजयो वा ।

ग्रहीतुम् (समर्थ) अथवा त्वां ग्रहीतुं मे=मम शक्तिः न अस्ति हि=नास्त्येव ॥११॥

पल्लव इति—पल्लव इव पल्लवक तत्सम्बुद्धौ हे पल्लवक ! नूतनकिसलय तुल्यरक्तवर्णशरीरत्वात् पूर्वोक्तनामधेयो यस्तत्सम्बोधनम् परभृतिका नाम्नी दासी तत्सम्बोधने परभृतिके ! सखायाम् अत्र एव मधुकरक ! शारिके इत्युभयत्रापि विवेचनीयम् सहृदयैः । मे = मम परिजन = रक्षक नष्ट अत्र = अस्यां परि स्थितौ स्वयमेव आत्मा रक्षितव्य स्वकीयां रक्षामहं कुर्याम् इति भाव ।

शकारो लोकविश्रुतवीराणामपि रक्षणासामर्थ्यं प्रदर्शयति—किमिति । वासुदेव =

पकड़ने के लिये समर्थ [illegible] अथवा तुम्हें पकड़ने के लिये मुझमें सामर्थ्य नहीं है ॥११॥

गणिका—(चारों ओर देखकर) पल्लवक ! पल्लवक ! परभृतिके ! परभृतिके ! मधुकरक ! मधुकरक ! शारिके ! शारिके ! हा धिक् ! मेरा परिजन नष्ट हो गया । ऐसी दशा में मैं स्वय अपनी रक्षा करती हूँ ।

शकार—ओ औरत ! विलाप करो पल्लवक परभृतिका मधुकरक शारिका इन्हीं को क्यों (बल्कि) इकट्ठे वसन्तमास को भी बुलाओ । (देखता हूँ) कौन तुम्हारी रक्षा एवं सहायता करता है ?

क्या वासुदेव (श्रीकृष्ण) या श्मशान के स्वामी (यमराज) या कुन्तीपुत्र (अर्जुन) या जयमेजय तुम्हारी रक्षा करेंगे ? (अर्थात् कोई नहीं तुम्हारी रक्षा

अहं त्वां गृहीत्वा केशहस्ते[1] दुःशासनः सीतामिवाहरामि ॥ १२ ॥]

विट :—वसन्तसेने ! सर्वत्र भयानभिज्ञहृदयं मां कुरु । पश्य,

परिचिततिमिरा मे शीलदोषेण रात्रि-

श्रीकृष्णः किं त्वां परित्रास्यते[2] इति अध्याहारः, एवमग्रेऽपि यथोचितं पदं एतन्निवेशनीयम् । शवपत्तनेशः —शवानाम् पत्तनम् = स्थानम्, नगरं वा श्मशानम्, तस्य ईशः = यमराजः, वा = अथवा कुन्तीपुत्रः = कर्णोऽर्जुनो वा तयोरेव धनुर्धरत्वेन प्रसिद्धत्वादिति आशयः । क्वचित् युधिष्ठिर इति पर्यायोऽपि भवितुमर्हति युधिष्ठिरस्य धार्मिकत्वाद् धार्मिकस्यैव पुरुषस्य परनारीरक्षणसम्भवात् इत्याशयः जनमेजयः = परिक्षित्पुत्रः अर्थात् न कोऽपि परित्रास्यत इति भावः, अहं (त्वां) केशहस्तं = केशसमूहमित्यर्थः 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः, (तव इति शेषः) गृहीत्वा = धृत्वा दुःशासनः सीतामिव आहरामि = आकृष्य नयामीत्यर्थः । वस्तुतस्तु दुःशासनः द्रौपदीमिव इत्येव समुचितः पाठः परन्तु शकारस्य अविवेकपूर्णोक्तिः उपमा भेप्या असत्पक्ष नावगाहते, यथोक्तमभियुक्तैः—'अपार्थमक्रमं व्यर्थं पुनरुक्तं हतोपमम् । लोकन्यायविरुद्धं च शकारवचनं विदुः ।' अपरश्च, 'आगमलिंगविहीनं देशकालन्यायसमयविपरीतम् । व्यर्थैकार्थमपार्थं भवति हि वचनं शकारस्य ॥ एवमेवोत्तरोत्तरमपि विवेचनीयम् सहृदयैः ॥ १२ ॥

सर्वत्र = सर्वस्मिन् काले भयानभिज्ञहृदयम् = भयशून्यमिति भावः, कुरु = जानीहि, धातूनामनेकार्थत्वात् इत्यर्थो भवति ।

परिचितेति—शीलदोषेण=स्वभावदोषेण, चौर्यादिदोषेण वा मे रात्रिः परि-

कर पायेगा) मैं तुम्हारे केशों को पकड़कर दुःशासन, जैसे [2]सीता को बलात् खींचकर (सभा के बीच) लाया था, वैसे ही खींचकर लाता हूँ ॥ १२ ॥

विट—अयि वसन्तसेने ! मुझे सब परिस्थिति में भयरहित जानो । देखो, मेरे स्वभाव दोष के कारण, रात्रि का समय (मेरे लिये) विशेष परिचित है

१ 'केशहस्ते' इत्यत्र 'केशहस्तम्' एतदेव पाठो रमणीयः स्यात् ।

२. यह शकार लोगों की योग्यता पर फबती है जिन्हें ऐतिहासिक एवं पौराणिक जानकारी नहीं के बराबर होती थी और जिनकी अर्थयोजना भौंड़ी एवं मनगढ़ चला करती थी । यही बात प्रस्तुत शकार में भी दृष्टिगोचर हो रही है ।

यंहुलतिमिरकालास्तीर्णपूर्वा विघट्टाः ।
युवतिजनसमक्षं काममेतन्न वाच्यं
विपणिषु हतशोभा रक्षिणः साक्षिणो मे ॥ १२ ॥

गणिका—(आत्मगतम्) हं इदाणिं संसइदा सवुत्ता, जो अप्पगुणाणि सअं एव्व मन्तेदि । कहं एदे अकय्यं ण करिस्सन्ति । [अहम् इदानीं सशयिता संवृत्ता य आत्मगुणान् स्वयमेव मन्त्रयते । कथमेतेऽकार्यं न करिष्यन्ति ।]

विट—भवति ! क्रियतामस्माकमनुनयप्रग्रहः । पश्य,

चितसिमिरा—परिचित तिमिर यस्या सा (आसीत्) तथा बहुलतिमिरकाला = कृष्णपक्षान्धकारकालवर्णा विघट्टा = मार्गा तीर्णपूर्वा = पूर्वं भ्रान्ता एतत् = कुकर्म वा क्रूरकर्म युवतिजनसमक्षम् कामम् = यथेष्टम् न वाच्यम् = कमनीयम् । परन्तु हतशोभा—हतेभ्य शोभा इत्यर्थ । विपणिषु = आपणेषु (बाजार) इति लोकभाषायाम् रक्षिण = प्रहरिण मे = मम साक्षिण = वधादिकर्मसाक्षिण प्रत्यक्षद्रष्टार अर्थात् राजपुरुष परिकीर्णेऽपि राजमार्गे राजरथ्याकाविमन्तुसत्वात् मे वधादिसाहसकर्मसु स्वेच्छाचारित्वम् जानीहि इति भाव ॥ १२ ॥

सशयिता = सदेहयुक्ता सवृत्ता = कृता अनेनेति शेष आत्मगुणान् = स्वक्रूरकार्याणि मन्त्रयते = स्थापयति अकार्य = पापकर्म ।

विट इति—अनुनयप्रग्रह—अनुनयस्य प्रग्रह = प्रवाह अनुबन्धोऽवेति भाव ।

(तात्पर्य यह है कि मैं रात्रि में ही कुकर्म करता हूँ) और मैंने पहले कृष्ण पक्ष में अन्धकार पूर्ण टेढ़ी मेढ़ी गलियों का भ्रमण भी किया है। मैं इन सब बातों को युवतिजन के समक्ष निर्देश (चर्चा) करना नहीं चाहता किन्तु बचे हुए बाजार के जो रक्षक हैं वे ही मेरे (वधादि क्रूर)कर्म के साक्षी भी हैं ॥ १२ ॥

गणिका—(स्वगत) मैं (पूर्वोक्त वृत्तान्त) से इस समय सन्देह में पड़ गई हूँ, जो स्वयं अपने गुणों को प्रकाशित करता है क्या निन्दित कार्य को नहीं करेगा ? अपितु करेगा ही ।

विट—हे माननीये ! आप हमारे अनुनय को स्वीकार कीजिए । देखें—

जनयति खलु रोषं प्रार्थ्यमानो निकामम्
किमिव च कविमानां उत्करं मतिधानाम् ।
अनुनयति नामर्थं खड्गधारी करोऽयं
यमतिलकप्रणाया मां शरीरं च रक्ष ॥ १४ ॥

गणिका — (सभयम्) जणाणओ वि खु से भाअदि । [अनुनयोऽपि भयमुत्पादयति ।]

शकारः — भट्टालोविआ ! छुट्ठु भावे भणादि । अङ्गुणिआवि हु मम भट्टिलआगहुलणादि अणणाद । पेक्खह दाव !

ईशवि मश्शु तिक्खके शिल्पिगीलशोआक
छिपेमि शीर्षं मथ मामक इदा ।
अलं ह आदहाणिदाकणि शोदिअ
मरेदि खु जो होदि ण ताम जीवदि ॥ १५ ॥

जनयतीति — प्रथमं निकामं निष्पाना - प्रार्थ्यमानाः सन् रोषम् क्रोधम् जनयति अत्र : निकामेन, मतिधानां कविमानाम् किमिव च दुर्लभम् भवति न किमपि आवर्जनीयम् इत्यादिति भावः । अयम् रामयो - नयादिकूर नर्तशाला खड्गधारी — खड्गेन धीरः करः - इतः स्वाम् अनुनयति - प्रार्थयते भातः (अनुनयपरिणामं कृत्वा) मां शरीरं च गुणतिलकप्रणाया - गुणस्य यथा तत्र घृणा तस्याः एवं - परिधारण आर्थात् येन विधिना गुणतिलकः मे भवेत तथा कुरु इति भावः ॥ १४ ॥

जनयति - जनयतुत्पादयति इत्यर्थः ।

और होता हुआ अनुनय निश्चय ही क्रोध को उत्पन्न कर देता है । और जैसे कोविद जन के लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है । (लक्षकर्म में) रागार्थी, लम्बी तलवार को धारण किए हुए यह हाथ (आप से) निवेदन करता है कि (अनुनय को स्वीकार करके) मुझे और मेरे शरीर को गुणति रूप की घृणा से बचाओ ॥ १४ ॥

गणिका — (सभय) इसका अनुनय भी मुझे भय उत्पन्न करता है ।

शकार — भट्टारकोने ! आपने ठीक उचित कहते हैं । बहलाद् जन से जो अनुनय मिलता है वह दुर्लभ होने के कारण बहुत कीमत रखता है । देखो, भाइ !

[वसन्तसेने ! सुष्ठु भावो भणति । बहुमान्यते खलु तावद् बलवज्जन दुर्लभोऽनुनय । पश्य बाले !

असि खलु तीक्ष्ण शिखिग्रीवामेचकः क्षिपामि शीर्षं तव मारयेऽथवा ।
अलं त्वस्मादृशकान् रोषयित्वा मृत खलु यो भवति न नाम जीवति ॥१५॥]

गणिका—अय्य ! कुलउत्तजणस्स सीलपरितोसोवजीविणी गणिआ क्खु अह ! [आर्य ! कुलपुत्रजनस्य शीलपरितोषोपजीविनी गणिका खल्वहम् ।]

विट—अत खलु प्रार्थ्यसे ।

बलवज्जनदुर्लभोऽनुनय —बलवज्जनात् दुर्लभ यदा कदा लभ्य अनुनय अपि लोके बहुमान्यते = शिरो धार्यते परिपाल्यते इत्यर्थ । तस्मात् अस्माकम् प्रार्थना स्वीकुरु इति फलितार्थ । हे बाले ! = हे बाले ! बाला स्यात् षोडशाब्दा इत्यमर । अत्र बाला शब्द कोमलसम्बोधने प्रयुक्त । तस्यैव बाला शब्दस्य सम्बुद्धौ बाले इति रूपम् भवति । पश्य = विचारय इति भाव ।

असिरिति—शिखिग्रीवामेचक —शिखिन = मयूरस्य ग्रीवा तद्वत् मेचक = श्याम तीक्ष्ण = निशित असि = कृपाण मे = मम (हस्ते अस्ति इति शेष अनेन) तव शीर्षम् = मस्तक क्षिपामि भूमौ पातयामीति भाव अथवा त्वाम् मारये प्राणविनाश करोमि । अस्मादृशकान् = मद्विधान् जनान् रोषयित्वा अलम् = व्यर्थं न किमपि फल सेत्स्यतीति भाव । कुत = इत्याह—मृतरिति । यो जनो मृत भवति स जनो खलु = निश्चयेन न जीवति नाम — न प्राणान् धारयति । अत अस्मद्धस्तगतत्वेन तव मरणस्य अनिवार्यतया पलायन निरर्थकमिति भाव ॥ १५ ॥

शीलपरितोषोपजीविनी—शीलेन परितोष इति शीलपरितोष तेन जीवतीति शीलपरितोषजीविनी गणिका = वेश्या ।

मयूर के कंठ के समान श्याम मेरा तीक्ष्ण (तेज) तलवार है । (इसलिये) तुम्हारे सिर को काट डालूंगा अथवा तुम्हें मार दूँगा । मेरे जैसे जन को क्रोधित करना उचित नहीं है । और जो मर जाता है वह जीवित भी नहीं होता ॥ १५ ॥

गणिका—आय, मैं कुलपुत्रजन के शीलरूपी परितोष से जीवित रहनेवाली वेश्या हूँ ।

वि—इसीलिए तो मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ।

विटः—(आत्मगतम्) आकुष्टमात्मानं न जानाति मूर्खः । ध्वस्त इत्युक्ते श्रान्त इत्यवगच्छति । अपि च,

अभिनयति वचांसि सर्वगात्रैः
किमपि किमप्यनवेक्षितार्थमाह ।
अनुचितगतिरप्रगल्भवाक्यः
पुरुषमयस्य पशोर्नवावतारः ॥ १६ ॥

(प्रकाशम्) वसन्तसेने ! किमिदं मत्सन्निधौ वेशवासविरुद्धमभिहितम् । पश्य,

---

आकुष्टम् = निन्दितम् इत्यर्थः ।

अभिनयतीति—(एष) सर्वगात्रैः वचांसि अभिनयति = शरीरावयवभङ्गिभिः मनोभावं प्रकटयतीति भावः किमपि किमपि अनवेक्षितार्थम्—न अनवेक्षित इति अनवेक्षितः = अनालोचितः अर्थः = प्रयोजनं यस्मिन् तत्तथा आह = कथयति । पुरुषमयस्य = पुरुषरूपस्य पशोः = जीवस्य (एष) अनुचितगतिः—अनुचिता गतिः अस्य तथा अर्थात् निन्दितव्यवहार इत्यर्थः अप्रगल्भवाक्यः—अप्रगल्भम् = प्रतिभाशून्यम् वाक्यं यस्य सः नवावतारः = नवीनोत्पत्तिः इत्यर्थः ॥ १६ ॥

वेशवासविरुद्धम्—वेशे = गणिकाभवने वासः = स्थितिस्तस्य वेश्याभावस्येतिभावः विरुद्धम् = अनुचितम् विपरीतम् श्रान्त इत्युक्तवचन

विट—(स्वगत) यह मूर्ख (शकार) अपने को निन्दित नहीं समझता। (वसन्त सेना के द्वारा) ध्वस्त (= विनाश एवं घृणा सूचक) कहे जाने पर भी श्रान्त (= थका हुआ) ऐसा समझ रहा है।

और भी—

यह सम्पूर्ण अङ्गों (की भाव भङ्गिमा) के द्वारा मनोगत भाव को प्रकट कर रहा है तथा कुछ-कुछ अस्पष्ट अभिप्राय को कह रहा है। यह पुरुष रूपी पशु (जीव) का एक नया अवतार है, जिसका व्यवहार निन्दित एवं वाक्य प्रतिभा शून्य है ॥ १६ ॥

(प्रकाश रूप से) वसन्त सेने ! तुमने क्यों मेरे सामने वेश्याओं के विरुद्ध वाक्य कहा ? देखो—

नायक—मूर्ख ! यथाविभवेनाच्यर्ताम् । भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि । तद् गम्यताम् ।

विदूषक—एआइ अह कह गमिस्स । [एकाकमहं कथं गमिष्यामि ।]

नायक—रदनिके ! अनुगच्छात्रभवन्तम् ।

रदनिका—ज भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

विदूषक—भोदि ! गीय अह णइस्स । [भवति ! दीपमहं नेष्यामि ।]

नायक—यथा भवान् मन्यते तथास्तु ।

विदूषक—(दीप गृहीत्वा) भो रदणिए ! अवावुद पक्खदुवार । [भो रदनिके ! अपावृणु पक्षद्वारम् ।]

रदनिका—तह । (नाट्येन द्वारमपावृणोति) [तथा ।]

(गणिका अञ्चलेन दीप निर्वापयति ।)

विदूषक—अविहा ! अविहा ! । [अविहा ! अविहा ! ।]

नायक—वयस्य ! किमेतत् ।

नायक इति—यथाविभवम् = विभवमनतिक्रम्य यथा स्यात्तथेति भाव ।
अविहा ! इति खेदे अव्ययम् ।

नायक—मूर्ख ! अपनी आर्थिक स्थिति के अनुकूल पूजा करो । भक्ति से ही देवता सन्तुष्ट होते हैं । अत जाओ ।

विदूषक—मैं अकेला कैसे जाऊँगा ?

नायक—रदनिके ! इनके साथ जाओ ।

रदनिका—जो महाराज की आज्ञा ।

विदूषक—माननीय म दीप लूँगा ।

नायक—जो आपकी इच्छा हो वही कीजिए ।

विदूषक—(दीप हाथ में लेकर) अयि रदनिके ! पार्श्वद्वार खोलो ।

रदनिका—अच्छी बात है । (अभिनय द्वारा पार्श्वद्वार (दरवाजा) को खोलती है ।)

(इसी बीच में द्वार के खुलते ही वहीं बैठी हुई गणिका वसन्तसेना वस्त्राञ्चल के द्वारा दीप को बुझा देती है ।)

विदूषक—हाय ! हाय !

नायक—मित्र ! क्या हुआ ?

विदूषक —अवावुदपक्खदुवारपिण्डीकिदप्पविट्ठेण राअमग्गसङ्किण्णेण वादेण सहसा णिग्गच्छन्तस्स मम हत्थे णिव्वावुदो दीवो। [अपावृतपक्षद्वारपिण्डीकृतप्रविष्टेन राजमार्गसङ्कीर्णेन वातेन सहसा निर्गच्छतो मम हस्ते निर्वापितो दीप ।]

नायक—मूर्ख ! धिक् त्वाम् ।

विदूषक —अप्पं खु मे अवरद्धं । रदणिए ! गच्छ, चउप्पहे म पडिवालेहि । जाव अहं वि अब्भन्तरचउस्सालादो दीवं गह्णिअ आअच्छामि । (निष्क्रान्त ।) [अल्प खलु मेऽपराद्धम् । रदनिके ! गच्छ, चतुष्पथे मा प्रतिपालय । यावदहमप्यभ्यन्तरचतुश्शालाद् दीप गृहीत्वाऽऽगच्छामि ।]

चेटी—अय्य ! तह । (परिक्रामति ।) [आर्य ! तथा ।]

गणिका—दिट्ठिआ मम पवेसणिमित्तं अवावुदं पक्खदुवारं । अलं चारित्तभएण । जाव पविसामि । (अभ्यन्तर प्रविश्य तिष्ठति ।) [दिष्ट्या मम प्रवेशनिमित्तमपावृत पक्षद्वारम् । अल चारित्रभयेन । यावत् प्रविशामि ।]

अभ्यन्तरचतु शालात्–चतसृणा शालानाम् समाहार इति चतु शालम्। अभ्यन्तरस्य, अभ्यन्तरस्य वा चतु शालम् तस्मात् तथा ।

प्रवेशनिमित्तम् = प्रवेशस्य निमित्तम् अथवा प्रवेश निमित्त कारणम् यस्मिन् तत्तथा, अपावृतम् = उद्घाटितम् ।

विदूषक—ज्योंही मैं शीघ्रता से दीपक लिए हुए बाहर हो रहा था, उसी समय सङ्कीर्ण राजमार्ग से अचानक आया हुआ वायु खुले हुए पार्श्व द्वार में एकत्रित हो गया और उसने दीप को बुझा दिया ।

नायक—मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है ।

विदूषक—सचमुच में, मेरा बहुत थोड़ा अपराध है । रदनिके ! चलो, चौराहे पर मेरी प्रतीक्षा करना । तब तक मैं भी दीप लेकर आता हूँ । (निकल जाता है ।)

चेटी (रदनिका)—आर्य, ऐसा ही हो । (घूमती है ।)

गणिका—सौभाग्य से मेरे प्रवेश के निमित्त चारुदत्त के घर का पार्श्वद्वार खोल दिया गया । चरित्र का भय करना अनुपयुक्त है । (अर्थात् ऐसी परिस्थिति में चरित्र का भय करने से कार्य नहीं चलेगा ।) तब तक प्रवेश करती हूँ । (भीतर प्रवेश कर बैठ जाती है ।)

विट—(विलोक्यात्मगतम्) भवनान्निर्गत्य काचिदियमागच्छति। भवतु, अनया वराकं वञ्चयामि। (प्रकाशम्) सुरभिस्नानधूपानुविद्ध इव गन्धः।

शकार—आम भावे! शुणामि गन्धं शवणेहिं। अन्धआलपूलिदेहिं णाशापुडहिं शुट्ठु ण पेक्खामि। [आम भाव! शृणोमि गन्धं श्रवणाभ्याम्। अन्धकारपूरिताभ्यां नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामि।]

विट—तिष्ठ तिष्ठ! क्व यास्यसि। (चेटीं गृह्णाति।)

(चेटी सभय भूमौ पतिता।)

शकार—गण्ह भाव! गण्ह। [गृहाण भाव! गृहाण।]

विट—

मया हि वयसो दर्पात् कुलपुत्रावमानिनी।

वराकम् = हतभाग्यम् (शकारम् इति शेषः)। सुरभिस्नानधूपानुविद्ध—स्नानस्य धूपः = गात्रानुलेपनद्रव्यविशेष इति स्नानधूपः सुरभिः स्नानधूपः तेन अनुविद्ध इव गन्ध इति भावः।

अन्धकारपूरिताभ्याम्—अन्धकारेण पूरिते ताभ्याम् (नासापुटाभ्याम् इति भावः)।

मया इति—वयसः = यौवनस्य दर्पात् = अभिमानात् (हेतौ) कुलपुत्रावमानिनी—कुलपुत्राणाम् = अस्मद्विधानां कुलपुत्राणाम् अवमानिनी = अवमानकारि

विट—(देखकर अपने आप) भवन से निकलकर यह कोई आ रही है। अच्छा मैं इसी के द्वारा (शकार को) ठगूँगा। (प्रकाश रूप से) सुगन्धित स्नान द्रव्य से व्याप्त यह गन्ध है।

शकार—हाँ (बिलकुल ठीक) भाव! मैं कानों के द्वारा गन्ध सुनता हूँ एवं अन्धकार से परिपूर्ण नासिका के द्वारा कुछ भी नहीं देख रहा हूँ।

विट—ठहरो, ठहरो। कहाँ जाओगी? (चेटी को पकड़ता है।)

(चेटी भय के कारण भूमि पर गिर पड़ती है।)

शकार—भाव पकड़ो, पकड़ो।

विट—मैंने पुष्प के विन्यास से सुगन्धित कोमल केशों के द्वारा (इसे) बलात्

केशेषु कु न्यासैः सेवितव्येषु धर्षिता ॥ २२ ॥

शकार —भावे ! किं गहीदा । [भाव ! किं गृहीता ।]

विट —अथ किम् । एषा गन्धानुसारेण गृहीता ।

शकार —दाशीए पुत्तीए शीशं दाव छिन्दिअ पश्चा मालइश्शं। [दास्या पुत्र्या शीर्षं तावच्छित्वा पश्चान्मारयिष्यामि ।]

विट —गृह्यतां तावत् ।

शकार —(चेटीं गृहीत्वा)

पशा हि वाश् शिलशि ग्गहीदा केशेशु वालेशु शिलोलुहेशु ।
कुआहि कन्दाहि लवाहि वात्तं महेश्शलं शङ्कलमिश्शलं वा ॥ २३ ॥
[एषा हि वास् शिरसि गृहीता केशेषु वालेषु शिरोरुहेषु ।

णीति भाव अथवा कुलपुत्रम् अवमन्यते या सा इति यावत् । एषा = वसन्तसेनेति भाव , कुसुमन्यासैः —कुसुमाना = पुष्पाणा न्यासैः = विन्यासैः स्थापनैर्वा, सेवितव्येषु = भूषणोपेतेषु केशेषु धर्षिता = बलाद् गृहीता ॥ २२ ॥

शीर्षम् = 'शीर्षस्थकेशम्' इति लक्षणया अर्थो बोद्धव्य इति श्रीकुसुदरञ्जन ।

एषा हीति—एषा वास् = बाला शिरसि केशेषु = कचेषु, बालेषु, शिरोरुहेषु इत्यधिक केशापरपर्यायत्वात् तथाहि—'चिकुर कुन्तलो बाल कच केश शिरोरुह ' इत्यमर । एवमेवाग्रेऽपि शिवादिपदानामधिकपदत्व ज्ञेयम् । गृहीता (असि) साम्प्रतम् शङ्करम् ईश्वर = विष्णु महेश्वर वा आर्तम् = कातरभावेन

पकड़ लिया है, (क्योंकि) यह तरुणावस्था के अभिमान से हमारे जैसे कुलपुत्रों को अपमानित कर रही है ॥ २२ ॥

शकार—भाव, क्या वह पकड़ ली गई ?

विट—और क्या ? यह केशों में लगाए हुए गन्धयुक्त प्रसाधन द्रव्यों के प्रभाव से पकड़ी गई है ।

शकार—सर्वप्रथम इस दासीपुत्री (दोगली) का सिर काटूंगा तदनन्तर मारूंगा ।

विट—तब तक पकड़ो ।

शकार—मैंने इस बाला को सिर से, केशों से तथा सिर के बालों द्वारा

कूज क्रन्द लय शार्वं महेश्वरं शङ्करमीश्वरं वा ॥ २३ ॥]

(चेटीं बलादाकर्षति ।)

चेटी—किं अय्यमिस्सेहिं ववसिदं । [किमार्यमिश्रैर्व्यवसितम् ।]

शकार—भावे ! जाणामि शलयोगेण ण होइ वशन्तशेणिआ ।

[भाव ! जानामि स्वरयोगेन न भवति वसन्तसेना ।]

विट—न मोक्तव्या । वसन्तसेनैवैषा ।

एषा रङ्गप्रवेशेन कलानां चैव शिक्षया ।
स्वरान्तरेण दक्षा हि व्याहर्तुं तन्न मुच्यताम् ॥ २४ ॥

(प्रविश्य)

विदूषक—(दीपं गृहीत्वा) राअमग्गासङ्कीण्णदाए सीअसुउमारेण वाअ्ण

रूप = उत्तरोत्तमुद्दिश्य विलाप कुरु क्रन्द कूज वा तथापि त्वां गृह्णामि इति भाव ॥

आर्यमिश्रैः = पूज्यवर्यैः व्यवसितम् = प्रारब्धम् ।

शकार इति—एषा = वसन्तसेना रङ्गप्रवेशेन = नाट्यागारप्रवेशेन बहुविध वाचिकाभिनयसम्पादनेन (हेतुना) इति भावः कलाना = विविधगानमहीनां शिक्षया = अभ्यासेन चैव स्वरान्तरेण = भिन्नस्वरेण व्याहर्तुम् = आक्रन्दितु मित्यर्थ । दक्षा = चतुरा तस्मात् (एषा) न मुच्यताम् त्वया इति शेष ॥२४॥

पकड़ा है । (चेटी को लक्ष्य करके) तुम विलाप करो चिल्लाओ या कातरभाव से शङ्कर ईश्वर या महेश्वर को बुलाओ, तथापि मैं तुम्हारे केशों को पकड़े रहूँगा ॥

(चेटी को बलपूर्वक खींचता है ।)

चेटी—आर्य लोगों के द्वारा यह क्या किया जा रहा है ?

शकार—भाव ! स्वर के योग से (वाणी से) मैं समझ रहा हूँ कि यह वसन्तसेना नहीं है ।

विट—छोड़ना नहीं । यह वसन्तसेना ही है । क्योंकि यह रंगशाला में नाटकीय ढङ्ग से प्रवेश करने के कारण तथा नानाविध धोखा देने की कलाओं के अभ्यास के कारण विभिन्न स्वरों के माध्यम से बोलने में प्रवीण है । अतः इसे छोड़ना नहीं ॥ २४ ॥

(प्रवेश कर)

विदूषक—(दीपक लेकर) राजमार्ग की संकीर्णता के कारण, शीत एवं

पदे पदे विक्खोहिअमाणजणिअतरङ्गतेल्लपुण्णभाअणं दीवं कहं वि रक्खिअ गण्हिअ आअदो म्हि । [राजमार्गसङ्कीर्णेन शीतसुकुमारेण वातेन पदे पदे विक्षोभ्यमाणजनिततरङ्गतैलपूर्णभाजन दीप कथमपि रक्षित्वा गृहीत्वागतोऽस्मि ।]

चेटी—(शकार पादेन ताडयन्ती रुदित्वा) अय्य ! मेत्तेअ ! अय परिभवो आदु अवलेवो । [आर्य ! मैत्रेय ! अय परिभवोऽथवावऽलेप ।]

विदूषक—मा दाव, मा दाव । (सखड्ग विट शकार च दृष्ट्वा शङ्कितस्तिष्ठति ।) [मा तावत्, मा तावत् ।]

विट—अये आर्यचारुदत्तस्य वयस्यो मैत्रेय खल्वयम । नेयमपि वसन्तसेना । महाब्राह्मण ! अन्यशङ्कया खल्विदमस्माभिरनुष्ठित, न दर्पात् । पश्यतु भवान्,

---

शीतसुकुमारेण = शीतस्निग्धेन इति भाव । वातेन = वायुना विक्षोभ्यमाणजनिततरङ्गतैलपूर्णभाजनम्—विक्षोभ्यमाणम् = आलोडितम् अत एव जनिततरङ्गम् तैलपूर्ण भाजन = तैलाधार यस्य एवभूत दीप गृहीत्वा = आदाय इति भाव । अतएव एतादृश दीपक गृहीत्वा रक्षित्वा च आगमने मे विलम्ब सञ्जात इत्यभिप्राय ।

अवलेप = दर्प ।

महाब्राह्मण ! ब्राह्मणाधम ! 'असिजीवी '

सुकुमार वायु के द्वारा पग-पग पर हिलने उठती थी । किसी तरह रक्षा

चेटी - पैर से मारती हुई है अथवा का घमण्ड ।

विदूष रे, ऐसा मत देखकर शं है ।)

विट—अ आर्य चारुदत्त नहीं है । हे ब्रा लोगों ने अ किया है, दर्प देखें—

अकामा ह्रियतेऽस्माभिः काचित् स्वाधीनयौवना ।
सा भ्रष्टा शङ्कया तस्याः प्राप्तेयं शीलवञ्चना ॥ २५ ॥

शकार—अविहा दलिद्दशात्थवाहपुत्तश्श चालुदत्तवडुअश्श चेडी क्खु ण्ण, ण होइ वशन्तशेणिआ । शाहु, वशन्तशेणिए ! शाहु ! अन्धआल कलिअ अन्तला पडिदे भावे, अहके गल वञ्चिदे कूडकावडशीलए । शव्वधा दुक्कले कडे । [अविहा दरिद्रसार्थवाहपुत्रस्य चारुदत्तवटुकस्य चेटी खल्विय न भवति वसन्तसेना । साधु वसन्तसेने ! साधु ! अन्धकारं कृत्वाऽन्तरा पतितो भावः । अहं तावत् वञ्चितः कूटकपटशीलया । सर्वथा दुष्करं कृतम् ।]

ायक पापकर्मैतान् पञ्चिंशा नाभिवादयन् इति स्मृत्युपदिष्टा गर्हितकर्माऽनुविधा ान्या महाब्राह्मणत्वेन सम्बोधनं परोपजीवित्वादिति हरिदासभट्टाचार्याः । अपर : शून्य तैलं तथा मांसे वैद्ये ज्योतिषिके द्विजे । यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो । दीयते इत्युक्तमहच्छब्दप्रयोगाद् महाब्राह्मणपदस्य नीचार्थप्रत्यायकत्वम् इति ाचित भवति । स्वशङ्कया—स्वस्य शङ्का = धारणा तया ।

अकामेति—अकामा = अस्मासु कामरहिता निरभिलषिता इति भावः स्वाधीन ावना स्वाधीनं यौवनं यस्याः सा अर्थात् स्वेच्छानुचरितयौवनव्यवहारा न तु परस्य ानत्वमभिप्रायः । काचित् = वसन्तसेना नाम्नी रमणी अस्माभिः ह्रियते = नीयते ान्तु । शकारभ्रमात् सा भ्रष्टा = अन्यया पलायिता च जाता तस्या एव शङ्कया = भ्रान्त्या भ्रमात् इयं सा एव इति भ्रमबुद्ध्येत्यर्थः । इयं रदनिकाग्रहणजनिता शीलवञ्चना = शीलस्य स्वभावस्य वञ्चना = स्खलनं सदाचारविरुद्धसम्भावना प्राप्ता (अस्माभिरिति शेषः) ॥ २५ ॥

कूटकपटशीलया—कूटं च = माया च कपटं च ते शीलम् = स्वभावः यस्याः

हम लोग प्रेमी स्त्री का पीछा कर रहे थे जो हम से प्यार नहीं करती थी और जिसे अपनी जवानी का अभिमान था। पर वह तो हमारे हाथ से निकल गई उसके धोखे में इस बेचारी की बदनामी हो गई ॥ २५ ॥

शकार—हाय ! यह दरिद्र वणिक्पुत्र चारुदत्त की चेटी है वसन्तसेना नहीं। साधु वसन्तसेने ! साधु ! तुमने (मायावी) ने अन्धकार करके विट को छला है। कपटशीलयाऽऽ तुमने मुझे भी वञ्चित किया । अतः तुमने सर्वथा दुष्कर (अर्थात् प्रशंसनीय) कार्य किया है ।

पदे पदे णिरसोहिअमाणजणिअतरङ्गतेल्लपुण्णभाअणं दीवं कहं पि रक्खिअ गहिअ आअदो म्हि । [राजमार्गसङ्कीर्णेन शीतसुकुमारेण वातेन पदे पदे निर्शोभ्यमानजनिततरङ्गतैलपूर्णभाजनं दीपं कथमपि रक्षित्वा गृहीत्वा गतोऽस्मि ।]

चेटी—(शकारं पादेन ताडयन्ती रुदित्वा) अज्ज ! मेत्तेअ ! अअं परिभवो अह्माणं अवलोअदो । [आर्य ! मैत्रेय ! अयं परिभवोऽस्माकमवलोक्यताम् ।]

विदूषकः—मा दाव, मा दाव । (सलज्जं विटं शकारं च दृष्ट्वा शङ्कितं स्थितः ।) [मा तावत्, मा तावत् ।]

विटः—अये आर्यचारुदत्तस्य वयस्यो मैत्रेयः खल्वयम् । नेयमपि वसन्तसेना । महाब्राह्मण ! अन्यशङ्कया खल्विदमस्माभिरनुष्ठितं, न दर्पात् । पश्यतु भवान्, ...

शीतसुकुमारेण — शीतस्पर्शेन इति भावः । वातेन = वायुना निर्शोभ्यमान-जनिततरङ्गतैलपूर्णभाजनम् निर्शोभ्यमानम् = आन्दोलितम् अत एव जनिततरङ्ग-तैलपूर्णं भाजनं तैलाधारः यस्य एवंभूतं दीपं गृहीत्वा = आदाय इति भावः । अतएव एतादृशं दीपकं गृहीत्वा रक्षित्वा च आगतोऽस्मि ते विलम्बः सञ्जात इत्यभिप्रायः ।

अवलेपः — दर्पः ।

महाब्राह्मण ! ब्राह्मणाधम ! 'पशिलीवी मसीजीवी देवलो ग्रामयाचकः ।'

सुकुमार वायु के द्वारा पग-पग पर हिलने से तेलपूर्ण पात्र में तरङ्ग-लहरियाँ उठती थीं । ऐसे दीप को किसी तरह रक्षा कर तथा लेकर के यहाँ आया हूँ ।

चेटी (शकार को पैर से मारती हुई रोकर) आर्य मैत्रेय ! यह मेरा अपमान है अथवा शकार जैसे लोगों का घमण्ड ।

विदूषक ऐसा मत करो, ऐसा मत करो । (लज्जायुक्त विट तथा शकार को देखकर शंकित हो रुक जाता है ।)

विट—अरे ! यह तो आर्य चारुदत्त के मित्र मैत्रेय हैं यह भी वसन्तसेना नहीं है । हे महाब्राह्मण, हम लोगों ने अन्य स्त्री (वसन्तसेना) की शङ्का से ऐसा किया है, दर्प से नहीं । आप देखें—

अकामा ह्रियतेऽस्माभि काचित् स्वाधीनयौवना । यौवने स्वतन्त्र
सा भ्रष्टा शङ्कया तस्या प्राप्तेय शीलवञ्चना ॥ २५ ॥ वेश्या

शकार—अविहा दलिद्दशत्थवाहपुत्तस्स चालुदत्तवडुअस्स चेडी क्खु इअ, ण होइ वशन्तशेणिआ । शाहु, वशन्तशेणिए ! शाहु ! अन्धआल क्खिअ अन्तला पविशिदे भावे, अहके दाव वञ्चिदे कूडकावडशीलए । शौनहा दुक्कलके कले । [अविहा दरिद्रसार्थवाहपुत्रस्य चारुदत्तवटुकस्य चेटी खल्विय न भवति वसन्तसेना । साधु वसन्तसेने ! साधु ! अन्धकार कृत्वाऽन्तरा प्रविष्टो भाव । अह तावद् वञ्चित कूटकपटशीलया । सर्वथा दुष्कर कृतम् ।] भाभा

याचक पाचकश्चैतान् षड्विप्रा नाभिवादयेत् इति स्मृत्युक्तदिशा गर्हितकर्मानुष्ठायित्वा महाब्राह्मणत्वेन सम्बोधन परोपजीवित्वादिति हरिदासमहाचार्या । अपर च 'गृध्र [illegible] तथा माषे वटे ज्योतिषिके द्विजे । यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते' इत्युक्तमहच्छब्दप्रयोगाद् महाब्राह्मणपदस्य नीचार्थप्रत्यायकत्वम् इति सूचित भवति । अन्यशङ्कया—अन्यस्य शङ्का = धारणा तया ।

अकामेति—अकामा = अस्मासु कामरहिता निरभिलषिता इति भाव स्वाधीनयौवना स्वाधीन यौवन यस्या सा अर्थात् स्वेच्छानुचरितयौवनव्यवहारा न तु परपीनेत्यभिप्राय । काचित् = वसन्तसेना नाम्नी रमणी अस्माभि ह्रियते = नीयते स्म । गाढान्धकारे सा भ्रष्टा = अस्मत्तः पलायिता च जाता तस्या एव शङ्कया = भ्रान्त्या अर्थात् इय सा एव इति भ्रमवशादित्यर्थ । इय रदनिकाग्रहणजनिता शीलवञ्चना = शीलस्य स्वभावस्य वञ्चना = स्खलन सदाचारनष्टसम्भावना जाता (अस्माभिरिति शेष) ॥ २५ ॥

कूटकपटशीलया—कूट च = माया च कपट च ते शीलम् = स्वभाव यस्या

हम लोग ऐसी स्त्री का पीछा कर रहे थे जो हम से प्यार नहीं करती थी और जिसे अपनी जवानी का अभिमान था। पर वह तो हमारे हाथ से निकल गई उसके धोखे में इस बेचारी की बेइज्जती हो गई ॥ २५ ॥

शकार—हाय ! यह दरिद्र वणिकपुत्र चारुदत्त की चेटी है, वसन्तसेना नहीं। साधु, वसन्तसेने ! साधु ! तुमने (आर्य) ने अन्धकार करके भीतर को घुसा है। कपटशीलवाली तुमने मुझे भी वञ्चित किया। अतः तुमने सर्वथा दुष्कर (अर्थात् प्रशंसनीय) कार्य किया है।

विदूषक —मा दाव । ण जुत्तमिदं । [मा तावत् । न युक्तमिदम् ।]

विट —भो महाब्राह्मण ! अयमनुनयसर्वस्वमञ्जलिः ।

विदूषक — भोदु, भोदु ! अणवरद्धो भवं । अणुणीदो अहं एव्व एत्थ अवरद्धो । [भवतु, भवतु ! अनपराद्धो भवान् । अनुनीतोऽहमेवात्रापराद्ध ।]

शकार —भावे ! दिढ खु भाआशि तं दलिद्दशत्थवाहपुत्तं चालुदत्तवडुकं । [भाव ! दृढ खलु बिभेषि त दरिद्रसार्थवाहपुत्र चारुदत्तबटुकम् ।]

विट —सत्यं भीतोऽस्मि ।

शकार —किश्श भावे ! किश्श । [कस्माद् भाव ! कस्मात् ।]

विट —तस्य गुणेभ्य ! पश्यतु भवान् ,

स मद्विधानां प्रणयैः कृशीकृतो
न तस्य कश्चिद् विभवैरमण्डितः ।

सा एवभूतया त्वयेति शेष ।

अनुनयस्य = आदरातिशयस्य सर्वस्व=परमप्रधानम् अयम् अञ्जलि प्रणामाञ्जलिरिति भाव ।

स इति—स = चारुदत्त मद्विधानाम् = मादृशाना याचकाना प्रणयै = प्रार्थनादिभि कृशीकृत = दरिद्रीकृत , क्षीणकोषता नीत इति भाव । तस्य = आर्यचारुदत्तस्य विभवै = धनै कश्चित् = सामान्योऽपि न अमण्डित = असत्कृत अर्थात् धनवितरणेन सर्व एव सत्कृता इति भाव । तु = किन्तु साम्प्रत ॥

विदूषक—ऐसा मत कहो ! यह असङ्गत है ।

विट—भो महाब्राह्मण, यह मेरी अनुनयरूपी अञ्जलि है ।

विदूषक—अच्छा, अच्छा, आप अपराधी नहीं है । आपसे अकारण अनुनय कराने के कारण मैं ही अपराधी हूँ ।

शकार—भाव ! दरिद्र वणिक्पुत्र से निश्चय ही आप डर रहे हैं ।

विट—मैं सचमुच में (उससे) डरता हूँ ।

शकार—क्यों महाशय, क्यों (आप उससे डर रहे हैं ?)

विट—उसके गुणों से । आप देखें—

वह मुझ जैसे जनों की याचना के हेतु क्षीण काय हो गया है । उसके वैभव से कोई भी व्यक्ति असत्कृत नहीं हुआ (अर्थात् उसके ऐश्वर्य से सब ही सत्कृत

निदाघसंशुष्क इव ह्रदो महान्
नृणां तु तृष्णामपनीय शुष्यति ॥ २६ ॥

महाब्राह्मण ! अयमर्थः सार्थवाहपुत्रस्य न कथयितव्यः ।

(निष्क्रान्तो विटः ।)

शकार—मालिश ! वडुअ ! मालिश ! भणेहि तं दलिद्दशत्थवाहपुत्तं चालुदत्तवडुअं मम वअणेण—शाअशाले शण्ठाणे शवट्टेण शीशेण अणुणिदिअ भणादि—णाडअइत्थिआ वशन्तशेणिआ णाम गणिआदारिआ शुवण्णवण्णा शुवेहिं अम्मेहिं बलक्कारेण णीअमाणा महन्तेण शुवण्णालङ्कारेण तव गेहं पविट्ठा । शा शुवे णिय्यादइदव्वा । मा दाव तव अ मम अ दालुणो खोहो होदि त्ति । वडुअ ! मालिश ! इदं च भणाहि—मा दाशीएपुत्त ! पालावदगलप्पविट्ठे विअ मूलकन्दे शीशकवाले मडमडाइश्शं । मा खु कवाडशम्पुडप्पविट्ठे विअ पक्ककवित्थे शीशे दे चुण्णाचुण्णं मडमडाइश्शं त्ति । [मारिष ! बटुक ! मारिष ! भण तं दरिद्रसार्थवाहपुत्रं चारुदत्तबटुकं मम वचनेन—राजश्यालः संस्थानकः सपट्टेन शीर्षेण

चारुदत्तः निदाघे = ग्रीष्मर्तौ शुष्कः = संशुष्कः महान् ह्रदः इव = जलाशयसदृशः नृणां = याचकवर्गाणाम् (ह्रदपक्षे) पिपासूनां जनानां तृष्णां = धनाभिलाषां जलपानाभिलाषां च अपनीय = दूरीकृत्य शुष्यति = धनाभावमाप्नोति ॥ २६ ॥

एवं संतुष्ट हुए) । ग्रीष्मकाल में सबकी प्यास बुझाने में ही स्वयं सूखे हुए एक महान सरोवर की भाँति वह सब (याचकों) की तृष्णा को शान्त करके निर्धन हो गया है ॥ २६ ॥

महाब्राह्मण सार्थवाहपुत्र को यह कथा नहीं कहनी चाहिये । (विट का निष्क्रमण ।)

शकार—मारिष ! बटुक ! मारिष ! दरिद्र सार्थवाहपुत्र चारुदत्त को मेरी ओर से कहना कि राजश्याल संस्थानक पगड़ी बाँधे हुए सिर से प्रणाम करके कहता है कि—सुवर्ण की तरह कान्तिवाली नटी वेश्यापुत्री वसन्तसेना को हम दोनों लाए थे जो सहसा बहुमूल्य सुवर्णालङ्कार के साथ आपके घर में प्रवेश कर गई । कल प्रातः उस घर से निकाल दें । जिससे मेरे और आपके बीच दारुणतर मनोमालिन्य न हो जाय । बटुक ! मारिष ! और यह भी कहो कि हे दासीपुत्र

सुवन्थ भणति–नाटकस्त्री वसन्तसेना नाम गणिकादारिका सुवर्णवर्णा द्वाभ्या-मावाभ्यां बलात्कारेण नीयमाना महता सुवर्णालङ्कारेण तव गेहं प्रविष्टा। सा श्वो निर्यातयितव्या। मा तावत् तव च मम च दारुणः क्षोभो भवतीति। बटुक! मारिष! इदं च भण–मा दास्या पुत्र! पारावतगलप्रविष्टमिव मूलकन्दं शीर्षकपालं मडमडायिष्यामि। मा खलु कपाटसम्पुटप्रविष्टमिव पक्वकपित्थं शीर्षं ते चूर्णचूर्णं मडमडायिष्यामि इति।]

विदूषक—भो! तह। (शकारं दीपेनोद्वेजयति।) [भो! तथा।]

शकार—(सर्वतो विलोक्य) कहिं भावे। गदे भावे। अविहा भावे!। [क्व भाव। गतो भाव। अविहा भाव!।]

(निष्क्रान्तः शकारः।)

विदूषक—किदं देवकय्यं त्ति तत्तहोदो णिवेदइस्सामो। भोदि! अवणीअदु दे हिअअमण्णू। अअं वुत्तन्तो अब्भन्तरं ण पेसिदव्वो। [कृतं देवकार्यमिति तत्रभवतो निवेदयिष्याव। भवति! अपनीयतां ते हृदयमन्युः। अयं वृत्तान्तोऽभ्यन्तरं न प्रेषयितव्यः।]

चेटी—अय्य! रदणिआ खु अहं। [आर्य! रदनिका खल्वहम्।]

सुवर्णवर्णा—सुवर्णस्य वर्ण इव वर्णः कान्तिः आभा वा यस्याः सा।

मैं कपोत के कण्ठ में पड़े हुए मूलकन्द की भांति तुम्हारे सिर तथा कपाल को नहीं फोड़ूंगा, अथवा दरवाजा के मध्य में गिरे हुए पक्के कैथ की तरह तुम्हारे सिर को चूर चूर करके नहीं खाऊगा।

विदूषक—भो! ऐसा ही हो। (शकार को दीप दिखाकर व्याकुल करता है।)

शकार—(चारों ओर देखकर) महाशय, आप कहाँ है, आप कहाँ चले गए, हाय महाशय!

(शकार निकल जाता है।)

विदूषक—देव कार्य समाप्त हुआ। यह (सवाद हमलोग) सम्माननीय चारुदत्त से निवेदन करेंगे। माननीये, हृदयगत दुःख को दूर कीजिए। मैं भी इस वृत्तान्त को अन्तःपुर में नहीं कहूँगा।

चेटी—आर्य, मैं रदनिका हूँ।

विदूषक—एहि गच्छामो । [एहि गच्छाव ।]

(उभौ परिक्रामत ।)

नायक—भद्रे ! कृत देवकार्यम् ।

गणिका—(आत्मगतम्) परिजणत्ति मं सद्दावेदि । भोदु, रक्खिद म्हि । [परिजन इति मां शब्दापयति । भवतु रक्षितास्मि ।]

नायक—मारुताभिलापी प्रदोष । तद् गृह्यतां प्रावारकम् ।

गणिका—(प्रावारकं गृहीत्वा सहर्षमात्मगतम्) अणुदासीण जोव्वण से पंडवासगन्धो सूएदि । [अनुदासीन यौवनमस्य पटवासगन्ध सूचयति ।]

नायक—रदनिके ! प्रवेश्यतामभ्यन्तरचतुःशालम् ।

गणिका—(आत्मगतम्) अभाइणी अहं अब्भन्तरप्पवेसस्स । [अभागिन्यहमभ्यन्तरप्रवेशस्य ।]

नायक—किमिदानीं न प्रविशसि ।

गणिका—(आत्मगतम्) इदाणिं अहं किं भणिस्सं । [इदानीमहं किं भणिष्यामि ।]

नायक—रदनिके ! किं विलम्बसे ।

प्रावारकम् = उत्तरीयवस्त्रम् दुपट्टा इति लोकभाषायाम् ।

विदूषक—आओ चलें । (दोनों घूमते हैं ।)

नायक—भद्रे ! क्या आपने देवकृत्य को पूरा कर लिया ?

गणिका—(स्वगत) मुझे परिचारिका समझकर बुला रहे हैं । जो कुछ हो, मेरी रक्षा हुई है ।

नायक—सन्ध्या समय ठंडी हवा चल रही है । अतः दुपट्टा ले लो ।

गणिका—(सहर्ष दुपट्टा ग्रहण करके) इस वस्त्र का सुगन्ध सूचित करता है कि इसका यौवनकाल उदासीन नहीं है ।

नायक—रदनिके इसे (वस्त्र को) अन्तःपुर के चतुःशाला में रख दो ।

गणिका—(स्वगत) मैं अन्तःपुर के प्रवेश के सम्बन्ध में अनधिकारिणी हूँ ।

नायक—क्यों अब भी अन्दर नहीं जा रही हो ?

गणिका—(स्वगत) मैं इस समय क्या कहूँगी ।

नायक—रदनिके, क्यों विलम्ब कर रही हो ?

(रदनिकाविदूषकावुपसृत्य)

चेटी—भट्टिदारअ ! इअं म्हि । [भर्तृदारक ! इयमस्मि ।]

नायक—इयमिदानीं का ।

अविज्ञातप्रयुक्तेन धर्षिता मम वाससा ।
संवृता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव शोभते ॥ २७ ॥

गणिका—(आत्मगतम्) दीवालोअसूइदरूवो सो एव्व दाणि एसो, जस्स किदे अहं णिस्सासमत्तलक्खिदं सरीरं उव्वहामि । [दीपालोकसूचितरूप स एवेदानीमेष, यस्य कृतेऽहं निःश्वासमात्ररक्षितं शरीरमुद्वहामि ।]

विदूषक—भो चारुदत्त ! राअसालो सण्ठाणो सवट्टेण सीसेण अणुबन्धिअ विण्णवेदि—णाडअइत्थिआ वसन्तसेणिआ णाम गणिआदारिआ अम्हेहिं बलक्कारेण णीअमाणा- महन्तेण सुवण्णालङ्कारेण

अविज्ञात इति—अविज्ञातप्रयुक्तेन—न विज्ञातम् इति अविज्ञातम्, अविज्ञातेन= अज्ञानेन प्रयुक्तम् = दत्तम् तेन, मम वाससा=वस्त्रेण धर्षिता=संयोजिता पीडिता वा इति भाव । शरदभ्रेण = शरत्कालीनमेघेन इत्यर्थ । संवृता = सछन्ना, आवृता वा चन्द्रलेखा इव शोभते = राजते ॥ २७ ॥

दीपालोकसूचितरूप = दीपस्य आलोक = प्रकाश तेन सूचित तादृश रूपम्= आकृति यस्य स, निःश्वासमात्ररक्षितम् = निःश्वासमात्रेण धृतम् इति भाव । उद्वहामि = धारयामि ।

(रदनिका और विदूषक समीप आकर)

चेटी—भर्तृदारक, मैं यहाँ हूँ ।

नायक—इस समय यह (महिला) कौन है जिसे मैंने अपनी अज्ञानता के कारण वस्त्र दे दिया है । इसे ओढ़कर यह शरत्कालीन मेघ से आच्छन्न चन्द्रमा की रेखा की तरह शोभा पा रही है ॥ २७ ॥

गणिका—(स्वगत) दीप के प्रकाश से सूचित आकृति वाले यह चारुदत्त ही हैं, जिसके निमित्त केवल मैं श्वासों में जीवित हूँ ।

विदूषक—भो चारुदत्त ! राजश्याल, संस्थानक (शकार) सवस्त्र सिर से वंदना करके आपसे निवेदन करते हैं कि नटी युवती वेश्यापुत्री वसन्तसेना को

तुम्हाणं गेहं पविट्ठा। सा सुवे णिय्यादइदव्वत्ति। [भो चारुदत्त ! राजश्यालः संस्थानः मपह्वेन शोर्षेणानुबन्ध्य विज्ञापयति—नाटकस्त्री वसन्तसेना नाम गणिकादारिकास्माभिर्बलात्कारेण नीयमाना महता सुवर्णालङ्कारेण युष्माकं गृहं प्रविष्टा । सा श्वो निर्यातयितव्येति ।]

गणिका—(आत्मगतम्) हं बलक्कारेण णीअमाणत्ति ण भणादि । भोदु, अअं पत्तकालो । (प्रकाशम्) अज्ज ! सरणागदम्हि । [हं बलात्कारेण नीयमानेति ननु भणति । भवतु अयं प्राप्तकालः । आर्य ! शरणागतास्मि ।]

नायक—न भेतव्यं, न भेतव्यम् । किं वसन्तसेनैषा ।

विदूषक—अयिहा वसन्तसेणा । (अपवार्य) भो चारुदत्त ! वसन्तसेणा खु इअं, जा भवदा कामदेवाणुआणप्पहुदि णअणमत्तसंथुदा सण्णिहिदमणोभवेण हिअएण उव्वहीअदि । सा पेक्खदु इअं । [अयिहा वसन्तसेना । भो चारुदत्त ! वसन्तसेना खल्वियं या भवता कामदेवानुयानप्रभृति नयनमात्रसंस्तुता सन्निहितमनोभवेन हृदयेनोह्यते । तत् पश्यत्विमाम् ।]

नायक—वयस्य ! पश्याम्येनां,

नयनमात्रसंस्तुता—नयनमात्रेण संस्तुता = परिचिता न तु आलपनसम्भाषणादिनेति भावः सन्निहितमनोभवेन—मनसि भवः उत्पत्तिर्यस्य स मनोभवः = कामः सन्निहितः = सञ्जातः मनोभवः यस्य तेन अर्थात् उपचितकामेनेत्यर्थः एवम्भूतेन (हृदयेनेति भावः) उह्यते = उद्वाहस्वरूपेण धार्यते ।

हमलोग बलात्कार करके लाये थे । यह प्रचुर अलङ्कार के साथ आपके महल में प्रवेश कर गई है । उसे कल प्रातः अपने यहाँ से निकाल दीजिये ।

गणिका—(स्वगत) अरे ! यह कहता है कि यह बलात्कार से लाई गई है । अच्छा यह समय तो आ ही गया । (प्रकाशरूप से) आर्य मैं शरणागत हूँ ।

नायक—डरो मत डरो मत । क्या यह वसन्तसेना है ।

विदूषक—हाय वसन्तसेना । (अलग करके) भो चारुदत्त ! यह वसन्तसेना ही है जिसका आपने कामदेव के उत्सवारम्भ के दिन नयनमात्र से ही परिचय किया था, तथापि आपको प्रीतिपूर्ण हृदय से स्वागत करती है । अतः इसे आप देखें ।

नायक—मित्र ! मैं इसे देखता हूँ—

यत्र मे पतितः कामः क्षीणे विभवसञ्चये ।
रोषः कुपुरुषस्येव स्वगात्रेष्वेवावसीदति ॥ २८ ॥

गणिका—अदिण्णभूमिप्पवेसापधरिसणेण अवरद्धा अहं अय्यं सीसेण पसादेमि । [अदत्तभूमिप्रवेशप्रधर्षणेनापराद्धाहमार्यं शीर्षेण प्रसादयामि ।]

नायकः—यद्येवमहमपि तावदविज्ञातप्रयुक्तेन प्रेष्यसमुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि ।

विदूषकः—भो ! विग्गहन्ता इव सआडिअं दुव्विणीदबलीवद्दा अण्णोण्णं नक्खिलेसन्ति । अहं दाणि क पसादेमि । भोदु, दाणि रदणिअं

यत्रेति—विभवसञ्चये क्षीणे = विनष्टे सति यत्र = यस्यां (वसन्तसेनायाम्) पतितः = संलग्नः मे = मम कामः = गाढानुरागः, सम्भोगपालना वा कुपुरुषस्य = अधमस्य, पुरुषार्थरहितस्य वा रोषः = क्रोध इव स्वगात्रेषु एव = स्वशरीरेषु एव अवसीदति = अन्तर्लीनो भवति न तु बहिर्भूय मनोरथपूरणादिना सफलीभवति अर्थात् धनाभावात् यथा अधमस्य रोषः शत्रूणां कमपि अपकारं करोति अपितु कोपकर्तुरेव हानिरित्यभिप्रायः ॥ २८ ॥

अदत्तभूमिप्रवेशप्रधर्षणेन = अदत्तः भूमिप्रवेशः = भूमिप्रवेशानुमति येन प्रधर्षणम् = पीडनम् तेन करणेनेत्यर्थः ।

प्रेष्यसमुदाचारेण—प्रेष्यस्य = भृत्यस्य समुदाचारः = शिष्टव्यवहार तेन हेतुनेति भावः ।

यद्यपि मेरा वैभव नष्ट हो गया है तथापि इसके (वसन्तसेना के) प्रति मेरी कामना (दृढ अनुराग) बनी हुई है। (कामना का स्थान हृदय है) जैसे बलहीन अधम पुरुष का क्रोध उसके शरीर में ही विलीन हो जाता है ॥ २८ ॥

गणिका—मैं गृह-प्रवेश की अनुमति के बिना आपके घर में जबर्दस्ती प्रवेश करने के कारण अपराधी हूँ तथा इसके लिये आर्य को मस्तक नवाकर प्रार्थना करती हूँ।

नायक—यदि ऐसी बात है तब तो मैं भी अनजाने में आपके साथ भृत्यवत् व्यवहार करने के कारण अपराधी हूँ और इसके लिये आपसे प्रार्थना करता हूँ।

विदूषक—गाड़ी को खींचने में लगे हुए दो दुर्विनीत बैलों की तरह ये परस्पर एक दूसरे को अनुनय प्रार्थना द्वारा क्लेश पहुँचा रहे हैं। मैं इस समय किसको

पसादेमि । रदणिए ! पसीददु, पसीददु होदी । [भो ! विपद्यन्तावि शृङ्गिणो दुर्विनीतबलीवर्दावन्योन्यं सङ्घट्टयत । अहमिदानीं कं प्रसादयामि । भवतु इदानीं रदनिकां प्रसादयामि । रदनिके ! प्रसीदतु प्रसीदतु भवती ।]

नायक—भवति ! परवानस्मि । किमनुतिष्ठति स्नेहः ।

गणिका—(आत्मगतम्) महुरं खु इच्छिदव्वं । अदक्खिणं खु पढमदंसणे जदिच्छागदाए इह पविसिदुं । ता एव्वं करिस्सं । (प्रकाशम्) जइ मे अज्जो पसण्णो, अअं मे अलङ्कारो इह एव्व चिट्ठदु । अलङ्कारणिमित्तं पावा मं अणुसरन्दि । अहं पि अज्जेण रक्खिदा गेहं गन्तुमिच्छामि । [मधुरं खल्वेष्टव्यम् । अदक्षिणं खलु प्रथमदर्शने यदृच्छागतया इह प्रवेष्टुम् । तदेवं करिष्यामि । यदि मे आर्यः प्रसन्नः अयं मेऽलङ्कार इहैव तिष्ठतु । अलङ्कारनिमित्तं पापा मामनुसरन्ति । अहमप्यार्येण रक्षिता गेहं गन्तुमिच्छामि ।]

परवान् = अहं त्वद्विषयकानुरागेण त्वदधीनः अस्मीति भावः अतः मदीयस्नेहः = अनुरागः किमनुतिष्ठति = किम् तव विधास्यतीति त्वमेव वदेत्यभिप्रायः ।

मधुरम् वस्तुआसमालिङ्गनादिरूपम् एष्टव्यम् एषितुं योग्यम् = प्रार्थनयोग्यमधुना । किन्तु प्रथमदर्शने तत्काले यदृच्छागतया अनर्हितोपस्थितया मया इह प्रासादगृहे वस्तुम् स्थातुम् अदक्षिणम् अयोग्यं स्यात् तदा अपराधो भवेदिति श्री कुसुदरञ्जनमहोदया । पापाः = दुष्टा इत्यर्थः ।

प्रसन्न करूँ ? अच्छा इस समय रदनिका को मनाता हूँ । अयि रदनिके ! तुम प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ ।

नायक—माननीये मैं (आपके प्रति प्रेम के कारण) पराधीन हूँ । अतः यह मेरा स्नेह आपको क्या देगा ?

गणिका—(स्वगत) मधुर वस्तु प्राप्त करने योग्य समय है । किन्तु एक बार देख लेने पर ही स्वच्छन्दता यहाँ आकर रहना अनुचित है । तब ऐसा करूँगी । (प्रकाश) यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तब ये अलङ्कार यहीं रहें । अलङ्कार के निमित्त पापीजन (विट एवं शकार) मेरा पीछा कर रहे हैं और मैं भी आप के द्वारा रक्षित होकर घर जाना चाहती हूँ ।

नायक —अन्वर्थमुपदिशति । मैत्रेय ! गृह्यताम् ।

विदूषक —ण मे सद्धा । [न मे श्रद्धा ।]

नायक —मूर्ख ! गृह्यताम् ।

विदूषक —ज भवं आणवेदि । आणेदु भोदी । [यद् भवानाज्ञापयति । आनयतु भवती ।]

(गणिका विमुच्यालङ्कारं प्रयच्छति ।)

विदूषक —(गृहीत्वा) रदणिए ! गह्ण एदं सुवण्णालङ्कारं तुवं । सट्ठीए सत्तमीए अ धारेहि । अहं अट्ठमीए अणज्झाए धारइस्सं । [रदनिके ! गृहाणैतं सुवर्णालङ्कारं त्वम् । षष्ठ्यां सप्तम्यां च धारय । अहमष्टम्यामनध्याये धारयिष्यामि ।]

चेटी—(विहस्य) सत्थं वक्खाणअन्तस्स भट्टिपुत्तस्स तदाणिं अवसरो होदि । आणेदु अय्यो । (गृहीत्वा निष्क्रान्ता ।)

[शास्त्रं व्याचक्षाणस्य भर्तृपुत्रस्य तदानीमवसरो भवति । आनयत्वार्यः ।]

नायक —कोऽत्र भोः ! । दीपिका तावत् ।

विदूषक —भोः ! दीविआ गणिका विअ णिस्सिणेहा संवुत्ता । [भोः ! दीपिका गणिकेव निःस्नेहा संवृत्ता ।]

अन्वर्थम् = प्रयोजनमिति भावः ।

निःस्नेहा—(दीपिकापक्षे) निर्गतः स्नेहः (तैलम्) यस्याः सा, (गणिका-

---

नायक—उचित कह रही हैं । मैत्रेय, इसे ले लो ।

विदूषक—मेरी श्रद्धा नहीं है ।

नायक—मूर्ख ! (क्रोध के साथ) ग्रहण करो ।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा । महाशया लाइये ।

(गणिका अलङ्कार को उतार कर देती है)

विदूषक—(ग्रहण करके) रदनिके, तुम इस सुवर्णालङ्कार को रखो । षष्ठी और सप्तमी को धारण करना । मैं अष्टमी तिथि को अनध्याय होने पर धारण करूंगा ।

चेटी—(हंसकर) शास्त्रों के व्याख्यान में व्यस्त आपको उसी दिन अवसर मिलता है । आर्य, लाइये । (ग्रहण करके निकल जाती है ।)

नायक—अरे ! यहाँ कौन है ? दीप लाओ ।

विदूषक—यह दीपक गणिका की भांति निःस्नेह (तेलहीन और प्रेमहीन) हो गया है ।

नायक—कृतं दीपिकया । (विलोक्य) उदितो भगवान् सर्वजनसामान्यप्रदीपश्चन्द्रः । अतः खलु,

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
र्युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः ।
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ॥ २९ ॥

पक्षे) निर्गतः स्नेहः = अनुरागः यस्याः सा सञ्जाता (दीपिकेति भावः)।

कृतम् = व्यर्थं पर्याप्तमिति यावत् युगपर्याप्तयोः कृतम्' इत्यमरः दीपकस्य तैलाभावकृतं प्रज्वालनायोग्यत्वं वसन्तसेनामभिमुखीकृत्य अधुना प्रकृतिनिर्मितस्य निखिलप्रकाशमयचन्द्रकिरणैरेव कार्यस्य सम्पादनीयत्वं वक्ति ।

उदयतीति—हि=यतः क्लिन्नखर्जूरपाण्डुः—क्लिन्नः=क्लेदयुक्तः खर्जूरः । ताडफलविशेषः तद्वत् पाण्डुः = श्वेतः हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः इत्यमरः समुज्ज्वलः इत्यर्थः युवतिजनसहायः = अभिसारविषये युवतिजनानाम् सहायः = पथप्रदर्शकः राजमार्गस्य प्रदीपः = प्रकाशकः शशाङ्कः = चन्द्रः उदयति = आकाशमुद्गच्छति । तिमिरनिचयमध्ये—तिमिराणाम् = अन्धकाराणां निचयः = समूहः तस्य मध्ये यस्य चन्द्रस्य गौराः = शुभ्रवर्णाः गौरः पीतेऽरुणे श्वेते विशुद्धे चाभिधेयवत् इति मेदिनी रश्मयः = किरणाः किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः इत्यमरः । हृतजले—हृतं निर्गतं वा जलं यस्मात् यस्य वा

नायक—दीप की कोई आवश्यकता नहीं है । (देखकर) सबके लिये सामान्य प्रदीप स्वरूप भगवान् चन्द्रमा का उदय हो गया है । इसी लिए यह ऐसा कहा जाता है—

आर्द्र खजूर की तरह शुभ्र युवतिजन के (अभिसरणकाल में) सहायक राजमार्ग का प्रदीप चन्द्रमा उदय हो रहा है जिसकी शुभ्र रश्मियाँ घनान्धकार में जलशून्य पङ्क में दूध की धारा की तरह गिर रही है (अर्थात् गाढ अन्धकार में शुभ्र चन्द्रमा की किरणें काले रङ्ग के पङ्क में दूध की धारा की तरह प्रतीत हो रही है ।) ॥ २९ ॥

भवति ! राजमार्गे निष्क्रमणं क्रियताम् । सखे ! अनुगच्छात्र भवतीम् ।

विदूषक —जं भवं आणवेदि । एदु एदु भोदी । [यद् भवानाज्ञापयति । एत्वेतु भवती ।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

प्रथमोऽङ्कः ।

तादृशो पङ्के = कर्दमे 'पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' इत्यमरः, क्षीरधारा इव = दुग्धधारा इव पतन्ति । भावमत्राशय —घनान्धकारे शुभ्रा चन्द्रकिरणा कृष्णवर्णपङ्कमध्ये दुग्धधारा इव प्रतीयन्ते ॥ २९ ॥

इति प्रथम अङ्क -अङ्कपदो वर्ण्यते श्रीरूचरितम् एव स्य अङ्क समाप्त इति ।

प्रथमोऽङ्क समाप्त ।

आप राजमार्ग पर चलें । मित्र आपके पीछे-पीछे (साथ) जाओ ।

विदूषक —जो आपकी आज्ञा । माननीया इधर से आइये । (सबके सब निकल जाते हैं) ।

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति गणिका चेटी च ।)

गणिका—तदो तदो । [ततस्ततः ।]

चेटी—अम्महे ण किञ्चि मए भणिदं । किं तदो तदो त्ति । [अम्महे न किंचिन्मया भणितम् । किं ततस्ततः इति ।]

गणिका—हञ्जे ! किं मए मन्तिदं । [हञ्जे ! किं मया मन्त्रितम् ।]

चेटी—अज्जुए ! सिणेहो पुच्छदि, ण पुरोभाइदा[1] । किं चिन्तीअदि । [अज्जुके ! स्नेहः पृच्छति न पुरोभागिता । किं चिन्त्यते ।]

गणिका—हञ्जे ! तुमं दाव किं त्ति तक्केसि । [हञ्जे ! त्वं तावत् किमिति तर्कयसि ।]

किं ततस्ततः = न मया किंचित् उक्तम् । तथापि कथं श्रीमती तत किं भूतम्' इति केन हेतुना ब्रूते इति भावः ।

हण्डे हञ्जे हला ह्वान नीचां चेटीं सखीं प्रति स्वमरवचनात् हञ्जे ! इति इति चेटीं प्रति सम्बोधनम् । मन्त्रितम् = भणितम् ।

अज्जुके ! इति सम्बोधनपदम् गणिके ! इत्यर्थे प्रयुक्तं यथोक्तम् अमर कोशे—'नाट्योक्तौ गणिकाऽज्जुका इति । स्नेहः पृच्छति=त्वां प्रति मदीयः स्नेहः पृच्छति अर्थात् मां कथयितुं प्रेरयति न मे पुरोभागिता = अवगुणैकदर्शिता औद्धत्य वा दोषैकदृक् पुरोभागी इत्यमरः ।

(इसके बाद गणिका और चेटी का प्रवेश)

गणिका—अब फिर क्या हुआ ?

चेटी—मैंने कुछ भी नहीं कहा तब आप क्यों पूछ रही हो कि तब फिर क्या हुआ ?

गणिका—प्रिय दासी मैंने क्या कहा ?

चेटी—माननीय ! आपके प्रति जो मेरा स्नेह है वही पूछने को बाध्य कर रहा है न कि उद्दण्डता । आप क्या सोच रही हैं ?

गणिका—प्रियदासी ! (इस विषय में) तुम क्या अनुमान कर रही हो ?

---

1 पुरोभाइदाए ।

चेटी—अप्पओअणदाए गणिआभावस्स अज्जुआ क पि कामेदि त्ति तक्केमि। [अप्रयोजनतया गणिकाभावस्याज्जुका कमपि कामयत इति तर्कयामि।]

गणिका—सुट्ठु तुए किद्। अवक्खिदा दे दिट्ठी। ईदिसवण्णय्येव। [सुष्ठु त्वया कृतम्। अवक्षिता ते दृष्टि। ईदृशवर्णैव।]

चेटी—अणलंकिद पि अज्जुअ मण्डिदं विअ पेक्खामि। कामो हि भअवं अणवगीदो ऊसुवो तरुणजणस्स। [अनलङ्कृतामप्यज्जुका मण्डितामिव पश्यामि। कामो हि भगवाननवगीत उत्सवस्तरुणजनस्य।]

गणिका—हदासे! उक्कण्ठिदव्वे का दे रदी। [हताशे! उत्कण्ठितव्ये का ते रति।]

गणिकाभावस्य—गणिकाया = वेश्याया भावस्य धनोपार्जनवृत्ते तद्विषये अप्रयोजनतया = प्रयोजनाभावात्, यतः त्वं धनाढ्या एव अर्थात् वाराङ्गना सम्बन्धे यत् प्रयोजनम् धनोपार्जनलक्षणं भवति तस्य अनावश्यकत्वात् अहं अनुमिनोमि यत् श्रीमती कमपि प्रियजनम् अभिलषति इति आशय।

कृतम् = तर्कितम्, आलोचितम् वा, ईदृशवर्णा—ईदृशो वर्ण स्वरूप यस्या सा एवभूता अहम् अस्मि इत्यर्थ।

अनवगीत—न अवगीत इति अनवगीत = अनिन्दित, काम = कामदेव, उत्सव = शोभादायक।

उत्कण्ठितव्ये = प्राप्तव्ये इष्टवस्तुनि अप्राप्ते ते का रति = सतोष प्राप्ते हि तस्मिन् स युक्त इत्यभिप्राय इति गणपतिशास्त्री।

चेटी—जब आपको गणिकावृत्ति (धनोपार्जन वृत्ति) की आवश्यकता नहीं है तब मैं कल्पना करती हूँ कि आप किसी 'प्रेमी' को चाहती है।

गणिका—तुमने अच्छा अनुमान किया। तुम्हारी दृष्टि अचूक है। मेरी अवस्था सचमुच ऐसी ही है।

चेटी—यद्यपि आप अलङ्कार से रहित हैं, फिर भी मैं आपको सुसज्जित एवं अलङ्कृत (नारी) की भाँति देख रही हूँ। भगवान् कामदेव तरुणजन के उत्सव स्वरूप एवं शोभादायक (आनन्दस्वरूप) हैं।

गणिका—हाय रे! आकांक्षित एवं अभीष्ट वस्तु की अनुपलब्धि के पहले ही (तुमको) आनन्द कैसे हो सकता है?

चेटी—अज्जुए ! इच्छामि पुच्छिदुं बहुमाणो विअ रमणीओ कोच्चि राअकुमारो । [अज्जुके ! इच्छामि प्रष्टुं बहुमान इव रमणीयः कश्चिद् राजकुमारः ।]

गणिका—रमिदुं इच्छामि, ण सेविदुं । [रन्तुमिच्छामि न सेवितुम् ।]

चेटी—किण्णु खु विज्जाविसेसरमणीओ कोवि बम्हणदारओ । [किन्नु खलु विद्याविशेषरमणीयः कश्चिद् ब्राह्मणदारकः ।]

गणिका—अत्थि अदिबहुमदो विस्सम्भो । पूअणीओ क्खु सो जणो । [अस्त्यतिबहुमतो विश्रम्भः । पूजनीयः खलु स जनः ।]

चेटी—किण्णु हु वणिअदारओ कोवि आगन्तुओ । [किन्नु खलु वणिग्दारकः कश्चिदागन्तुकः ।]

विद्याविशेषरमणीयः—विद्यायाः विशेषेण रमणीयः गुणवान् एवंभूतः कश्चित् ब्राह्मणदारकः = ब्राह्मणपुत्रः कामयते किम् ?

अतिबहुमतः = मम ब्राह्मणपुत्रे बहुसमादरयुक्तः विश्रम्भः = प्रणयः अस्ति । खलु = निश्चयेन सः जनः पूजनीयः = भोजनवस्त्रादिदानसम्मानाभ्यामर्हणीयः अत एव पूजार्हः न खलु रमणार्हः । अपरं च पूजनीयाः विलासवैमुख्यं भजन्ते इत्यभिप्रायः ।

कश्चित् आगन्तुकः = वैदेशिकः वणिग्दारकः = वणिक्पुत्रः कामयते किम् ।

चेटी—माननीये ! मैं यह पूछना चाहती हूँ कि क्या आप रमणीय एवं बहुमानित किसी राजकुमार को चाहती हैं ?

गणिका—मैं किसी सुन्दर सुकुमार की सेवा करना नहीं चाहती बल्कि प्रेमी के साथ रमण करना चाहती हूँ ।

चेटी—क्या विद्या विशेष से रमणीय (गुणी) किसी ब्राह्मण कुमार को तो नहीं चाहती ?

गणिका—(मेरा ब्राह्मण पुत्र में) बहुत बड़ा अनुराग है, परन्तु वह पूजा के योग्य है (अर्थात् उपभोग एवं आनन्द के योग्य नहीं है) ।

चेटी—तब क्या कोई आगन्तुक (वैदेशिक) वणिक्पुत्र को चाहती है ?

गणिका—उम्मत्तिए ! आसाच्छेदं उक्कण्ठन्ता का सहेदि । [उन्मत्तिके ! आशाच्छेदमुत्कण्ठमाना का सहते ।]

चेटी—किं ण सक्क सोदुं । को अम्हाणं मणोरहाउत्तो । [किं शक्य श्रोतुम् । कोऽस्माक मनोरथावुत्त ।]

गणिका—किं तुवं कामदेवाणुयाणे ण आअदा सि । [किं त्वं कामदेवानुयाने नागतासि ।]

चेटी—ण आअदम्हि । [नन्वागतास्मि ।]

गणिका—केण उदासीण मन्तेसि । [केनोदासीन मन्त्रयसे ।]

चेटी—भणादु, भणादु अज्जुआ, भणादु । [भणतु, भणत्वज्जुका, भणतु ।]

गणिका—हञ्जे ! सुणाहि दाव । अत्थि सत्थवाहपुत्तो चारुदत्तो णाम । [हञ्जे ! शृणु तावत् । अस्ति सार्थवाहपुत्रश्चारुदत्तो नाम ।]

उत्कण्ठमाना=अभीष्ट कामयमाना, भोगकामा वा का नाम स्त्री वैदेशिके प्रीतिं सत्याप्य वैदेशिकस्य अन्यत्र गमनात् आशाच्छेदम् = आशाभङ्ग सहते, न कापि तत् सहते इत्यर्थ । अतस्ते मम अभीष्टविषये तादृश वणिक्पुत्रस्य अनुमाद चित्तविभ्रमप्रसूतम् एव, तस्मात् त्वम् उन्मत्तिका असि ।

मनोरथावुत्त —मनोरथस्य आवुत्त = भगिनीपति ।

कामदेवानुयाने—कामदेवस्य अनुयाने = उत्सवे समागमे वा ।

गणिका—उन्मत्तिके ! क्या उत्कण्ठित एवं भोगों की कामना करनेवाली कोई नारी वैदेशिक से प्रीति करके (उसके अन्यत्र चले जाने के कारण) आशाभंग को सहन कर सकती है ? अर्थात् कोई नहीं सहन कर सकती ।

चेटी—क्या मैं नहीं सुन सकती कि कौन हमारे जीजा साहब हैं ।

गणिका—क्या तुम कामदेव के उत्सव में नहीं आई थी ?

चेटी—हाँ, मैं आई थी ।

गणिका—क्यों उदासीन होकर बोलती हो ?

चेटी—आप कह दीजिए ।

गणिका—अरी ! तब तुम सुनो । वणिक्पुत्र चारुदत्त है ।

चेटी—जेण सरणागआ तुम रक्खिदा । [येन शरणागता त्वं रक्षिता ।]

गणिका—सो एव्व । [स एव ।]

चेटी—हद्धि, दरिद्दो क्खु सो । [हा धिक् दरिद्रः खलु सः ।]

गणिका—अदो क्खु कामीअदि । अदिदरिद्दपुरुससत्ता गणिआ अवअणीआ होइ । [अत खलु काम्यते । अतिदरिद्रपुरुषसक्ता गणिका अवचनीया भवति ।]

चेटी—अज्जुए ! उद्धूदपुप्फं सहआरं महुअरा उवासन्ति । [अज्जुके ! उद्धूतपुष्पं सहकारं मधुकरा उपासते ।]

गणिका—हञ्जे ! एव्व, उवासन्ति । दे महुअरा त्ति पुच्छीअन्ति । [हञ्जे ! एवम् उपासते । ते मधुकरा इति पृच्छ्यन्ते ।]

अवचनीया—न वचनीया अवचनीया = अनिन्दनीया इत्यर्थः ।

उद्धूतपुष्पम्—उद्धूतानि = उद्धृतानि पुष्पाणि यस्य तत् एवम्भूतम् सहकारम् = आम्रवृक्षम् रसालं वा मधुकरा = मधुग्रहणशीला भ्रमरा (मधुहरा) उपासते । लोकेऽपि मधुवत् धनरता गणिका अस्ति इति ख्याति । करोतेरत्र कारणत्वात् भ्रम ग्रहणार्थे हरणार्थे वा व्यवह्रियते ।

अत्र वसन्तसेना स्वकीयदास्याः कथनस्य प्रतिवादं कुर्वत्याह—एवमिति । अत एव ते = एवमुपासीना भ्रमरा मधुकरा मधुग्रहणशीला इति पृच्छ्यन्ते = उपालभ्यन्ते इति भावः ।

चेटी—जिसने आपकी रक्षा की थी ।

गणिका—वही ।

चेटी—हा धिक् ! वास्तव में वह दरिद्र है ।

गणिका—इसीलिये तो उसे चाहती हूँ । अति दरिद्र पुरुष में आसक्त वेश्या किसी से वचनीया नहीं होती ।

चेटी—मालकिन ! जिसमें मञ्जरी निकल आई हो उसी आम्रवृक्ष की उपासना मधुकर किया करते हैं ।

गणिका—सखि ! वे ऐसे हैं इसीलिए तो (लोग) उनको मधुकर (मधुहारक या धनहारक) ऐसा कहकर उपालम्भ देते हैं ।

चेटी—किं, विहवमन्ददाए वेसवासप्पसङ्गकादरो दुक्खं त्ति जइ ण आअच्छे । [किं, विभवमन्दतया वेशवासप्रसङ्गकातरो दुःखमिति यदि नागच्छेत् ।]

गणिका—णं अहं तं कामेमि । [नन्वहं तं कामये ।]

चेटी—जइ एत्तओ बहुमाणो, किं णाभिसरीअदि । [यद्येतावान् बहुमानः, किं नाभिस्रियते ।]

गणिका—ण हु ण गच्छामि । किन्तु सहसा अभिसरिदो पच्चुअआरदुल्लभदाए पुणो मे दुल्लभो भवे त्ति विलम्बेमि । [न खलु न गच्छामि । किन्तु सहसाभिसृतः प्रत्युपकारदुर्लभतया पुनर्मे दुर्लभो भवेदिति विलम्बे ।]

विभवमन्दतया—विभवस्य = ऐश्वर्यस्य मन्दता = क्षीणता इति विभवमन्दता तया । वेश (=वेश्याजनसमाश्रय) वेशे वास , तस्य प्रसङ्ग =प्रसक्तिः, आसक्तिः वा तस्मिन् कातर (स चारुदत्त), एतादृश चारुदत्त वेशवास दुःखम् = दुःखजनकम् इति मत्वा यदि नागच्छेत् तदा किं करिष्यामि इति आशय ।

तदा विभवक्षीणतादुःखस्य स यथा विषयो न भवेत् तथा करिष्यामि, तं कामयमाना च तादृशम् आचरेयम् अत आह—'नन्वहं तं कामये' इति ।

अभिस्रियते = स किं न अभिस्रियते त्वया इति शेष ।

न खलु न गच्छामि—अहं न खलु गच्छामि इति न, अपि तु गच्छाम्येव । किन्तु सहसा = हठात् इदानीमेव अभिसृत सन् प्रत्युपकारदुर्लभतया—प्रत्युपकारे दुर्लभ = असमर्थ चारुदत्त तद्भावतया, 'अहं प्रत्युपकर्तुं न समर्थोऽस्मि' इति

चेटी—यदि वेश्याजन में अनुराग होने से कातर (चारुदत्त) वैभव के विनाश के कारण यहाँ वेशवास में (=वेश्यागृह में) न आये, तब आप क्या करेंगी ?

गणिका—मैं तो वास्तव में उसे ही चाहती हूँ ।

चेटी—यदि उसके प्रति आपका बड़ा आकर्षण एवं समादर है तो क्यों नहीं आप स्वयं चली जातीं ?

गणिका—मैं अवश्य जाऊँगी । किन्तु इस समय मेरा सहसा अभिसरण बाद में उसे अनुपयोगी (दुर्लभ) बना देगा, क्योंकि वह इस समय प्रत्युपकार करने में असमर्थ है । इसीलिये, मैं विलम्ब कर रही हूँ ।

चेटी—हा, किं एतण्णिमित्तं तहिं एव्व सो अलङ्कारो ठाविदो । [हा किमेतन्निमित्तं तत्रैव सोऽलङ्कारः स्थापितः ।]

गणिका—ईदिसं एव्व । [ईदृशमेव ।]

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण संवाहकः ।)

संवाहकः—अय्ये ! सरणागदो म्हि । [आर्ये ! शरणागतोऽस्मि ।]

गणिका—अलं अय्यस्स सम्भमेण । [अलमार्यस्य सम्भ्रमेण ।]

इतो स पुनः मे = मम सम्बन्धे दुर्लभ = अप्राप्य भवेत् यदि अर्थात् मम समीप नागच्छेत् इति हेतो अहम् इदानीं विलम्ब = विलम्ब करोमि इत्यथ ।

'अपटीक्षेपेण—पटस्य पटस्य वा = जवनिकायाः क्षेप = निरसनम् इति पटीक्षेप जवनिकापसारणम्, न पटीक्षेप तेन, जवनिकामनपसार्य एव प्रविशति संवाहक = कश्चित् अङ्गमर्दनकलाजीवी इत्यर्थः । अत्र पटीक्षेपो न कर्तव्य आर्ते राजप्रवेशने इति नियमबलात् आर्तस्य भयातस्य वा संवाहकस्य अपटीक्षेपेण प्रवेशो न असङ्गत ।

नाम' इति प्राकाश्ये वा सम्भावनायामव्ययम् साहसेन चरतीति साहसिकः ।

सुलभचारित्रखण्डना—चरित्रमेव चारित्रम् चारित्रस्य खण्डनम् = भङ्गः सुलभ चारित्रखण्डन यासाम् ते तथा । अपराधयितुम्—अपराध कर्तुमित्यथ ।

— अभिजनेन—जन्मना गणिका न तु शीलेन = चारित्रेण इत्याशय ।

संवाहक इति—धनिकात् = धनिकः द्यूतविजयी अतः तस्य सकाशात् मम भयम् अस्ति इति भाव ।

भयस्य इत्यत्र सम्बन्धविवक्षया षष्ठी वस्तुतस्तु चतुर्थी एव उपयुक्ता ।

चेटी—हाँ क्या इसी उद्देश्य से आप अपने अलङ्कारों को उनके (चारुदत्त के) पास रख आई हैं ?

गणिका—सचमुच यही बात है ।

(तब प [ ]^१ के बिना गिराये ही संवाहक (पैर दबानेवाला) का प्रवेश)

संवाहक—आर्य ! [illegible] शरणागत हूँ ।

गणिका—आपको व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं है ।

१ श्री प गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में अपटाक्षेपेण यह पाठ मिलता है ।

चेटी—ह, को दाणि एसो। [ह क इदानीमेषः।]

गणिका—उम्मत्तिए! किं सरणाअदो पुच्छीअदि। [उन्मत्तिके! किं शरणागत पृच्छ्यते।]

चेटी—अवि णाम साहसिओ भवे। [अपि नाम साहसिको भवेत्।]

गणिका—उम्मत्तिए! गुणवन्तो रक्खिदव्वो होदि। [उन्मत्तिके! गुणवान् रक्षितव्यो भवति।]

संवाहक—अय्ये! ण भएण उवआरो विस्सरिदो, ण परिभवेण। पेक्खदु अय्या, भीदाहवा पधरिसिदाहवा आवण्णाहवा सुलभचारित्तव्वक्खणाहवा अवराहेदुं समत्था होन्ति। [आर्ये! ननु भयेनोपचारो विस्मृत, न परिभवेन। पश्यत्वार्या, भीता अथवा प्रधर्षिता अथवा आपन्ना अथवा सुलभचारित्रवचना वा अपराधयितुं समर्था भवन्ति।]

गणिका—भोदु, भोदु। विस्सत्थो भोदु अय्यो। गणिआ क्खु अहं। [भवतु, भवतु। विश्वस्तो भवत्वार्य। गणिका खल्वहम्।]

संवाहक—अभिजणेण, ण सीलेण। [अभिजनेन, न शीलेन।]

गणिका—हञ्जे! एव्व विअ। [हञ्जे! एवमिव।]

चेटी—अज्जुआ अय्य पुच्छदि, कुदो अय्यस्स भअं ति। [अज्जुका आर्यं पृच्छति, कुत आर्यस्य भयमिति।]

चेटी—हाँ, यह कौन है?

गणिका—उन्मत्तिके! शरणागत के विषय में क्या पूछती हो?

चेटी—हो सकता है कोई साहसी (अपराधी) हो।

गणिका—उन्मत्तिके! गुणवान् की रक्षा होनी चाहिये।

संवाहक—मैं सचमुच में भय के कारण उपचार (भद्रता) भूल ही गया था, न कि अपमान से। महाशया देखें—भयभीत, तिरस्कृत, विपद्ग्रस्त तथा चरित्र-भ्रष्ट (जन) शिष्टता के व्यवहार में अपराध कर जाता है।

गणिका—अच्छा, अच्छा। आर्य आश्वस्त हों। मैं वास्तव में गणिका हूँ। अतएव यहाँ शिष्टाचार के अंश को लेकर कुछ भी नहीं कहूँगी।

संवाहक—आप जन्म से 'गणिका' हैं व्यवहार से नहीं।

गणिका—अरी! यह ऐसा ही है।

चेटी—माननीया आपसे पूछ रही हैं कि, आपको किसका भय है?

संवाहकः—अय्ये ! धणिआदो । [आर्ये ! धनिकात्]

गणिका—जइ एव्वं, आसणं देहु अय्यस्स । [यद्येवम् आसनं दीयतामार्यस्य ।]

चेटी—तह । (आसनं ददाति ।) [तथा ।]

गणिका—उवविसदु अय्यो । [उपविशत्वार्यः ।]

संवाहकः—(स्वगतम्) पूआविसेसेण जाणामि कय्यं त्ति । (उपविशति ।) [पूजाविशेषेण जानामि कार्यमिति ।]

गणिका—हञ्जे ! एव्वं विअ । [हञ्जे ! एवमिव ।]

चेटी—अज्जुए ! तह । अय्य ! राअमग्गे विस्सत्थसम्पादं अय्यं कादुं इच्छदि अज्जुआ । कस्स किं कत्तव्वं । [अज्जुके ! तथा । आर्य ! राजमार्गे विश्वस्तसम्पातमार्यं कर्तुमिच्छत्यज्जुका । कस्य किं कर्तव्यम् ।]

संवाहकः—सुणादु अय्या । [शृणोत्वार्या ।]

पूजाविशेषेण = पूजायाः विशेषेण = बहुसमादरेण इति भावः । जानामि = अनुमिनोमि यत् मम कार्यम् = प्रयोजनम् इष्टकार्यम् वा अत्र सिद्ध्येत् इति भावः । श्रीगणपतिशास्त्री महोदयस्तु कार्यम्—धनिकोपद्रवपरिहारलक्षणं मदीप्सितम् अनया सम्पादयितुं शक्यम् एव कथयति ।

विश्वस्तसम्पातम्—विश्वस्तः सम्पातः यस्य तम् ।

संवाहक—आर्ये ! मुझे धनिक से भय है ।

गणिका—यदि ऐसा है तो इन्हें आसन दो ।

चेटी—ऐसा ही हो (आसन देती है ।)

गणिका—आर्य (इस आसन पर) बैठें ।

संवाहक—(स्वगत) मैं पूजा विशेष के द्वारा अनुमान करता हूँ कि कार्य की सिद्धि होगी । (बैठता है ।)

गणिका—अरी ! ऐसा ही होने दो । (चेटी के प्रति)

चेटी—माननीये ऐसा ही हो । (संवाहक के प्रति) आर्य ! माननीया आपको राजमार्ग में भयरहित करना चाहती हैं । कोई क्या कर सकता है ।

संवाहक—आर्या सुनें ।

गणिका—अवहिदम्हि । [अवहितास्मि ।-]

संवाहक—पाडलिपुत्त मे जम्मभूमी । पकिदीए वणिजओ अह। तदो भाअधेअपरिवुत्तदाए दसाए संवाहअवुत्तिं उवजीवामी । [पाटलिपुत्र मे जन्मभूमि । प्रकृत्या वणिगहम् । ततो भागधेयपरिवृत्ततया दशया संवाहक वृत्तिमुपजीवामि ।]

गणिका—संवाहओ अय्यो । सुउमारा कला सिक्खिदा अय्येण। [संवाहक आर्य । सुकुमारा कला शिक्षितार्येण ।]

संवाहक—कलेत्ति सिक्खिदा । आजीविआं दाणिं संवुत्तं। [कलेति शिक्षिता । आजीविकेदानीं संवृत्ता ।]

गणिका—णिव्वेदसूअअं विअ वअणं अय्यस्स । तदो तदो । [निर्वेदसूचकमिव वचनमार्यस्य । ततस्ततः ।]

संवाहक—अज्जुए ! सो दाणिं अहं आअन्तुआण सुणिअ पुरुस

अवहितास्मि = श्रोतुं सावधानास्मि ।

भागधेयस्य—भाग एव इति स्वार्थे धेय-प्रत्यय -भागधेयम्, परिवृत्तम् 'तस्य भाव' इति भावे तल् प्रत्यय, भागधेयस्य परिवृत्तता = प्रतिकूलता यस्याम् तया एवभूतया दशया = अवस्थया या भाग्यदशा चक्रारपंक्तिरिव परिभ्रमति । संवाहकवृत्तिम्—संवाहकस्य = अङ्गमर्दकस्य वृत्तिम् = उपजीविकाम् उपजीवामि ।

निर्वेदसूचकम् = दुःखसूचकम् ।

गणिका—मैं सावधान हूँ।

संवाहक—पाटलिपुत्र (=पटना) मेरी जन्मभूमि है। मैं स्वभावत वणिक् (=बनिया) हूँ। इसके बाद, मैं भाग्य के परिवर्तन होने के कारण संवाहक की वृत्ति को ग्रहण किये हुए हूँ।

गणिका—आप संवाहक हैं। आपने सुकुमार कला की शिक्षा ली है।

संवाहक—मैंने इसे कला के रूप में तो सीखा था पर साथ [illegible] साथ इस समय मेरे लिये यही जीविका भी है।

गणिका—आर्य का यह वचन निर्वेदसूचक है। तं

संवाहक—आर्ये ! संवाहकवृत्ति के उपयुक्त बड़े ए

विसेसकोदूहलेण आअदो म्हि इमं उज्जइणिं। [अज्जुके ! स इदानीमहमागन्तुकानां श्रुत्वा पुरुषविशेषकौतूहलेनागतोऽस्मीमामुज्जयनीम् ।]

गणिका— तदो तदो। [ततस्ततः ।]

संवाहकः—तदो इह आअदमत्त एव्व कोवि सत्थवाहपुत्तो समासादिदो। [तत इहागतमात्र एव कश्चित् सार्थवाहपुत्रः समासादितः ।]

गणिका—केरिसो। [कीदृशः ।]

संवाहकः—आइदिमन्तो अविम्हअन्तो अणुच्छित्तो ललिदो ललिददाए अविम्हओ चउरो महुरो दक्खो सव्वविदक्खो अभिमदो आदरो तुट्ठो होदि। दत्तं ण विकत्थेदि। अप्पं वि सुमरदि, बहुअं पि अवइदं विसुमरदि। अज्जुए! किं बहुणा, तस्स कुलपुत्तस्स गुणाणं वडब्भाअं पि सुविग्घेण वि गिम्हविअङ्ढण वण्णिदुं ण सक्क। किं बहुणा, दक्खिण्णदाए परकेरअं विअ अत्तणो सरीरं धारेदि। [आकृतिमान् अविस्मयन् अनुत्सिक्तो ललितो ललि

आगन्तुकानाम्—इत्यत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी आगन्तुकेभ्य इति रमणीयः पाठः। पुरुषविशेषकौतूहलेन—पुरुषाणाम् विशेषः अर्थात् विशिष्टपुरुष इत्यर्थः पुरुषविशेषस्य वा तस्मिन् कौतूहलम् तेन हेतुना अर्थात् संवाहकस्त्वस्युपजीव्या पुरुषविशेषाः उज्जयिन्यां सुलभाः इति आगन्तुकमुखात् विज्ञाय पुरुषविशेषकौतूहलेन = भिन्नपुरुषविशेषलिप्सया इति शास्त्रिणोऽभिप्रायः ।

आगतमात्र—आगतम् आगमनम् मात्रा = परिमाणम् यस्य तस्मिन् आगतमात्र एव समासादितः = प्राप्तः ।

अनुत्सिक्तः—न उत्सिक्तः = गर्वरहितः । अविस्मयः—विस्मयः = गर्वः अवि

यह बात आगन्तुकों के मुख से सुनकर यहाँ (उज्जयिनी में) आया।

गणिका—तब क्या हुआ ?

संवाहक—तब यहाँ आते ही एक वणिक्पुत्र से मेरी भेंट हुई।

गणिका—वह कैसा है ?

संवाहक—वह रूपवान् विद्वान् मदरहित ललित एवं अपने सौन्दर्य पर अभिमान न करने वाला चतुर मधुर दक्ष सहृदय प्रतिष्ठित और याचकों को सन्तुष्ट करने वाला है। दान देकर किसी से कहता नहीं। अल्प उपकार को भी स्मरण करता है। बहुत अपकार को भी विस्मृत कर देता है। माननीये, अधिक

ततयाविस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षिण्योऽभिमत आश्रितस्तुष्टो भवति। दत्त्वा न विकत्थते। अल्पमपि स्मरति, बहुकमप्यपकृतं विस्मरति। अज्जुके! किं बहुना, तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्मासैरपि सुदीर्घेणापि ग्रीष्मदिवसेन वर्णयितुं न शक्यम्। किं बहुना, दक्षिणतया परकीयमिवात्मनः शरीरं धारयति।]

गणिका—(अपवार्य) हञ्जे! कोणु क्खु सो अय्यचारुदत्तस्स गुणाणं अणुकरेदि। [हञ्जे! को नु खलु स आर्यचारुदत्तस्य गुणाननुकरोति।

चेटी—मम वि कोदूहलं सोदुं। को णु क्खु उज्जइणि अत्तणो गुणेहिं मण्डेदि। ममापि कौतूहलं श्रोतुम्। को नु खलूज्जयिनीमात्मनो गुणैर्मण्डयति।]

गणिका—तदो तदो। [ततस्ततः।]

संवाहक—तदो तस्स गुणविक्किणिदसरीरो विस्सरिदकलत्तो उवजीविओ संवुत्तो। ततस्तस्य गुणविक्रीतशरीरो विस्मृतकलत्र उपजीवी संवृत्तः।]

गणिका—किं सो दरिद्दो। [किं स दरिद्रः।]

धमानः विस्मयः यस्य स तथोक्तः। सदाक्षिण्यः—दाक्षिण्येन सह वर्तमानः सदाक्षिण्यः। किं बहुना = कथितेन किं स्यात्, न किमपि स्यात्। दक्षिणतया = सहृदयतया।

गुणविक्रीतशरीरः—गुणेन विक्रीतं वशीकृतं तादृशं शरीरं यस्य सः। विस्मृतकलत्रः—विस्मृतं कलत्रं भार्या येन सः।

क्या कहूँ? उस गुणवान् कुलपुत्र के गुणों का वर्णन करने के लिये ग्रीष्मकाल का लम्बा दिन भी अपर्याप्त है। संक्षेप में, दया-दाक्षिण्यादि गुणों से वह ऐसा जान पड़ता है कि मानो अपना शरीर दूसरों के लिये ही धारण करता है।

गणिका—(बीच में रोककर) प्रिय दासी? सचमुच में कौन है, जो आर्य चारुदत्त के गुणों का अनुकरण कर सके? अर्थात् कोई नहीं।

चेटी—मुझे भी सुनने से कौतूहल हो रहा है। वास्तव में कौन है जो अपने गुणों से उज्जयिनी को भूषित करता है?

गणिका—तब क्या हुआ?

संवाहक—तब उसके गुणों के वशीभूत हो मैं उसका सेवक बन गया और अपनी पत्नी को भी भुला दिया।

गणिका—क्या वह दरिद्र है?

संवाहक—कहं अणाचक्खिदे अय्या जाणादि । [कथमनाख्यातमार्या जानाति ।]

गणिका—एअस्सिं दुल्लहो गुणविभवो त्ति । तदो तदो । [एकस्मिन् दुर्लभो गुणविभव इति । ततस्ततः ।]

चेटी—को णाम सो अय्यो । [को नाम स आर्यः ।]

संवाहकः—अय्यचारुदत्तो णाम । [आर्यचारुदत्तो नाम ।]

गणिका—जुज्जइ । तदो तदो । [युज्यते ततस्ततः ।]

संवाहक—तदो सो विभवक्खवदाए अस्साहीणपरिजणो विसज्जिअकुडुम्बभरणो चारित्तमत्तावसेसो सत्थवाहकुले पडिवसदि । अहं पि तेण अय्येण अब्भणुण्णादो—अण्णं उवचिट्ठदु त्ति । कहं अण्णं परिसं मणुस्सरअणं लभेअ त्ति, कहं च तस्स कोमलललिदमहुरसरीरप्परिसकिदत्थे मे हत्थे साहारणसरीरसम्मद्देण सोअणीअं करिस्सं त्ति जादणिव्वेदो पवसरीररक्खणत्थं जूदोवजीवी संवुत्तो । [ततः स विभवक्षयतयाऽस्वाधीनपरिजनो विसर्जितकुटुम्बभरणश्चारित्रमात्रावशेषः सार्थवाहकुले प्रतिवसति ।]

अस्वाधीनपरिजन—न स्वाधीनः आत्माधीनः परिजनः यस्य सः । विसर्जितकुटुम्बभरण—विसर्जितम् = दूरीकृतं परित्यक्तं वा कुटुम्बभरणं = परिवारपालनं येन सः । चारित्रमात्रावशेष—चारित्रमात्रम् = स्वकीयव्यक्तित्वमात्रम् अवशेषं यस्य सः । अभ्यनुज्ञात = आदेशित । उपतिष्ठताम् = सेवताम् । अन्यम्

संवाहक—बिना कही बात को भी आप कैसे जान जाती हैं ?

गणिका—एक व्यक्ति में यह सम्पूर्ण गुण दुर्लभ है (इसीलिये मैं ऐसा कह रही हूँ)। तब फिर क्या हुआ ?

चेटी—उस आर्य का नाम क्या है ।

संवाहक—उसका नाम आर्य चारुदत्त है ।

गणिका—उपयुक्त ही है । तब क्या हुआ ?

संवाहक—इसके बाद वह अर्थहीनता के कारण अपने परिजनों से छूट गया और कुटुम्ब का भरण-पोषण त्यागकर एकमात्र अपने चरित्र की रक्षा करते हुए वणिक्कुल में रहने लगा । उस महात्मा ने मुझे भी आदेश दिया कि तुम भी किसी दूसरे की सेवा करो । ऐसा ही अन्य पुरुषरत्न कैसे उपलब्ध हो सकेगा

अहमपि तेनार्येणाभ्यनुज्ञातोऽन्यमुपतिष्ठतामिति । कथमन्यमीदृशं मनुष्यरत्नं लभेयेति, कथं च तस्य कोमलललितमधुरशरीरस्पर्शकृतार्थं मे हस्तं साधारण शरीरसमर्दनं शोचनीयं करिष्यामीति जातनिर्वेदो दग्धशरीररक्षणार्थं द्यूतोपजीवी संवृत्त ।]

(गणिका सहर्षबाष्प चेटीमवलोकयति ।)

चेटी—तदो तदो । [ततस्ततः ।] ,

संवाहक—तदो बहूणि दिणाणि मए पराइदेण पुरुसेण कदाइ अहं पि दहसु सुवण्णेसु पराइदो म्हि । [ततो बहूनि दिनानि मया पराजितेन पुरुषेण कदाचिदहमपि दशसु सुवर्णेषु पराजितोऽस्मि ।]

गणिका—तदो तदो । [ततस्ततः ।]

संवाहक—तदो अज्ज वेसमग्गे जइच्छोवणदो समासादिदो म्हि ।

जनम् इति शेष । कोमललल्तिमधुरशरीरस्पर्शकृतार्थम्—कोमलं च तत् ललितं च इति कोमलललितं च मधुरं च इति कोमलललितमधुरम् एवभूतं शरीरं तस्य स्पर्शेन कृतार्थम् = कृतकृत्यम् एवरूप हस्तमित्यर्थ , साधारणशरीरसमर्दनेन—साधारणशरीरस्य = सामान्यजनशरीरस्य समर्दनेन । दग्धशरीररक्षणार्थम्—दग्ध शरीरं तस्य रक्षणार्थम् द्यूतोपजीवी—द्यूतेन उपजीवति आत्मनिर्वाह करोतीत्यर्थ ।

और उसके कोमल, मधुर, एवं ललित शरीर के स्पर्श से कृतार्थ एवं अभ्यस्त यह मेरा हाथ सर्वसाधारण शरीर के सम्मर्दन से कैसे सन्तुष्ट होगा ? यही शोचनीय हो गया । उसी दुःख से दुखी मैं इस कम्बख्त शरीर की रक्षा के लिये 'जुआरी' हो गया हूँ ।

(गणिका आनन्द की आँसू के साथ सहर्ष चेटी को देखती है)

चेटी—तब फिर क्या हुआ ?

संवाहक—तब मैंने जिसे बहुत दिनों तक पराजित किया उसी ने एक दिन जुए में मुझको दश स्वर्ण मुद्रा से पराजित कर दिया ।

गणिका—तब क्या हुआ ?

संवाहक—इसके बाद आज, भाग्य के उलटा होने के कारण यहाँ मुझको इसी

तस्स भएण इह पविट्ठो । एवं अय्या जाणादु । [ततोऽस्य वेशमार्गे यदृच्छोपनतः समासादितोऽस्मि । तस्य भयेनेह प्रविष्टः । एवमार्या जानातु ।]

गणिका—(आत्मगतम्) अहो अच्चाहिदं ! एव्वं क्खु मण्णे वासपादवपरिणासेण पक्खिणो आहिण्डन्ति त्ति । (प्रकाशम्) एव्वं गदे अत्तकेरओ अय्यो । हला ! एहि तं जणं विसज्जेहि । [अहो अत्याहितम् । एवं खलु मन्ये वासपादपविनाशेन पक्षिण आहिण्डन्त इति । एवं गत आत्मीय आर्यः । हला ! एहि तं जनं विसर्जय ।]

चेटी—तह । (निष्क्रान्ता ।) [तथा ।]

गणिका—ण क्खु अय्येण अत्थणिमित्ता चिन्ता कादव्वा । अय्यचारुदत्तो एव्व देदि त्ति अय्यो जाणादु । [न खल्वार्येणार्थनिमित्ता चिन्ता कर्तव्या । आर्यचारुदत्त एव ददातीत्यार्यो जानातु ।]

(प्रविश्य)

वेशमार्गे—वेशस्य = वेश्यागृहस्य मार्गे तस्मिन् अर्थात् यत्र गणिकाः निवसन्ति इति भावः । यदृच्छोपनतः—यदृच्छया उपनतः = आगतः अहम् ते समासादितः = प्राप्तः ।

अत्याहितम्—अति अधिकम् अतिशयेन वा आहितम् = महद्भयम् समुपस्थितम् अत्याहितं महद्भयम् इत्यमरः । वासपादपविनाशेन = निवासवृक्षविनाशेन हेतुना आहिण्डन्ते = स्थानभ्रष्टीभूय इतस्ततः भ्रमन्ते पक्षिणः इति शेषः ।

वेश्यालय (की गली) के समीप में वह धनिक (विजयी जुआरी) मिल गया । उसी के भय से मैं यहाँ आया हूँ । मेरी कहानी आप इस रूप से जानें ।

गणिका—(स्वगत) आह ! बहुत बड़ी आपत्ति है । आवास वृक्ष के विनाश के कारण जैसे पक्षी इधर उधर आश्रयहीन होकर घूमते फिरते हैं वैसा मैं समझती हूँ । (प्रकाश रूप से) ऐसी स्थिति में आप तो मेरे आत्मीय (सम्बन्धी) हैं । (चेटी के प्रति) हला ! जाओ विजयी जुआरी को (कुछ द्रव्य देकर) विदा करो ।

चेटी—ऐसा ही हो (निकल जाती है ।)

गणिका—आप धन के विषय में चिन्ता न करें । आर्य चारुदत्त ही धन दे रहे हैं, ऐसा आप समझें ।

(प्रवेश कर)

चेटी—अज्जुए ! विसज्जिदो सो जणो, परितुट्ठो गदो अ । [अज्जुके ! विसर्जित स जन', परितुष्टो गतश्च ।]

सवाहक —अणुग्गहिदो म्हि । [अनुगृहीतोऽस्मि ।]

गणिका—गच्छदु अय्यो सुहिज्जणदसणेण पीदिं णिव्वत्तेदुं । [गच्छत्वार्यं सुहृज्जनदर्शनेन प्रीतिं निर्वर्तयितुम् ।]

सवाहक —अज्ज एव कदाइ णिव्वेदेण पव्वजेअं । जइ इअं परिअणे सङ्कन्ता कला भवे, तदो अय्याए अणुग्गहिदो भवेअं । [अद्यैव कदाचिन्निर्वेदेन प्रव्रजेयम् । यदीय परिजने सङ्क्रान्ता कला भवेत्, तत आर्यया-नुगृहीतो भवेयम् ।]

गणिका—जस्स किदे इअं कला सिक्खिदा, सो एव्व अय्येण उवचिट्ठिदव्वो भविस्सदि । [यस्य कृते इय कला शिक्षिता, स एवार्येणोप-स्थातव्यो भविष्यति ।]

सवाहक —(स्वगतम्) णिउणं खु पच्चाचक्खिदो म्हि । को हि णाम

सुहृज्जनदर्शनेन—सुहृज्जनानाम् दर्शनेन प्रीतिं निर्वर्तयितुम् = सम्पादयितुम् गच्छतु आर्य इति भाव ।

निर्वेदेन = वैराग्येण हेतुना ।

उपस्थातव्य = सेवितव्य पूजयितव्यश्च ।

चेटी—माननीये ! उसको द्रव्य दे दिया है और वह सन्तुष्ट होकर चला भी गया ।

सवाहक—मैं अनुगृहीत हूँ ।

गणिका—कृपया आप जायँ, अपने बन्धुओं को दर्शन देकर प्रसन्न करें ।

सवाहक—मैं आज ही उद्वेग के कारण 'सन्यास' या प्रव्रज्या ले लूँगा । किन्तु यदि आप अनुग्रह करके अनुमति दें तो अभ्यस्त मर्मर्दन कला को आपके परिवार के लोगों को सिखा दूँ ।

गणिका—जिसके लिये आपने इस कला का अभ्यास किया उसी की आप सेवा करें ।

सवाहक—(स्वगत) गणिका ने बड़ी निपुणता के साथ मेरी बात का प्रत्या-

अप्पणा किद पच्चुअआरेण विणासेदि । (प्रकाशम्) अय्ये ! गच्छामि दाव अहं । [निपुणं खलु प्रत्याख्यातोऽस्मि । को हि नामात्मना कृत प्रत्युपकारेण विनाशयति । आर्ये ! गच्छामि तावदहम् ।]

गणिका—गच्छदु अय्यो पुणोदसणाअ । [गच्छत्वार्यः पुनर्दर्शनाय ।]

संवाहक —अय्ये ! तह । (निष्क्रान्तः ।) [आर्ये ! तथा ।]

गणिका—ह, सद्दो विअ । [इ शब्द इव ।]

(प्रविश्य)

चेट —विच्छिअसिए ! विच्छिअसिए ! कहिं कहिं अज्जुआ । [विच्छितिके ! विच्छितिके ! कुत्र कुत्राज्जुका ।]

गणिका—हञ्जे ! किं एदं । [हञ्जे किमेतत् ।]

निपुणम् = सुस्पष्टं यथा स्यात् तथा प्रत्याख्यातः = अस्वीकृतः निन्दितो वा गणिकया इति शेषः ।

दर्शनाय = दर्शनं दातुम् इत्यर्थः ।

तथा = तथा अस्तु । एवं तावत् नायकविषया रतिः परिपोषिता इति तात्पर्यम् ।

विच्छितिका इति तत्रत्या काचित् परिचारिका अस्ति तस्या इयं संज्ञा अत एव सम्बोधयति विच्छितिके इति ।

किमेतत् = किमेतत् आपतितम् इत्यर्थः ।

बयान किया । कौन व्यक्ति अपने लिए उपकार को उपकार के द्वारा विनाश करना चाहता है ? (प्रकाश रूप से) आर्ये ! तब मैं जाता हूँ ।

गणिका— आर्य जाइये और फिर दर्शन दीजियेगा ।

संवाहक—ऐसा ही हो । (निकल जाता है ।)

गणिका—हाँ किसी की आवाज आ रही है ।

(प्रवेश कर)

चेट (वसन्तसेना का सेवक)—विच्छित्तिके विच्छित्तिके ! माननीया गणिका (वसन्तसेना) कहाँ हैं ?

गणिका—अरे ! क्या बात है ?

चेट—हं, विप्पलद्धो म्हि, वादाअणणिक्कामिदपुव्वकाआए ओण मिअपओहराए कण्णऊरस्स परिप्फन्दो अज्जुआए जेण ण दिट्ठो। [ह, विप्रलब्धोऽस्मि, वातायननिष्कामितपूर्वकायया ऽवनमितपयोधरया कर्णपूरस्य परिस्पन्दोऽज्जुकया येन न दृष्ट ।]

गणिका—लहुजणस्स सुलहो विम्हओ। किं दे उस्सेअस्स कारणम्। [लघुजनस्य सुलभो विस्मय । किं ते उत्सेकस्य कारणम् ।]

चेट—सुणादु अज्जुआ—एसो उग्गवेगेण ओगाहणणिव्वत्तिदेण पस्सुदमदगन्धं राअमग्गं करन्तेण मङ्गलहत्थिणा भद्दकवोदएण अणेअपुरुससङ्कुलेसु राअमग्गेसु उत्तरिअपडविराअदाए अहिअलक्खणीओ कोवि पव्वइदो समासादिदो। [शृणोत्वज्जुकाएष उग्रवेगेनावगाहननिर्वर्तितेन प्रस्तुतमदगन्धं राजमार्गं कुर्वता मङ्गलहस्तिना भद्रकपोतकेनानेकपुरुषसङ्कुलेषु राजमार्गेषूत्तरीयपटविरागतयाऽधिकलक्षणीय कश्चित् प्रव्रजित समासादित ।]

विप्रलब्धोऽस्मि = अहं वञ्चित, अकृतार्थो वा अस्मि यत वातायननिष्क्रामितपूर्वकायया—वातायने = गवाक्षे निष्कामित = सक्रामित पूर्वकायो यस्या तया, अवनमितपयोधरया—धरतीति धर, पयसा धर इति पयोधर, अवनमित पयोधर यस्या तया, एव भूतया अज्जुकया (भवत्या) कर्णपूरस्य = 'वसन्तसेनाया भृत्यविशेष सुधामधुरशब्देन श्रोतु कर्णौ पूरयतीत्यर्थक' (एवभूतस्य मम) परिस्पन्द = वीरतापूर्णकर्म न दृष्ट तेन हेतुना अह वञ्चित ।

उत्सेकस्य = गर्वस्य ।

भद्रकपोतकेन—दर्शयर्प भवेत् प्रोत स एव पोतक स्वार्थे क, भद्रकश्चासौ

चेट—मेरा दुर्भाग्य है क्योंकि गवाक्षके बाहर अपने शरीर का ऊपरी भाग निकालकर और नवनें के कारण झुके हुए स्तनों के साथ आपने मेरा (कर्णपूरका) वीर कर्म नहीं देखा।

गणिका—साधारणजन में सहज ही विस्मय होता है। तुम्हारे गर्व का क्या कारण है ?

चेट—आर्या सुनिये—मगल कार्य के योग्य भद्रक नामक हाथी के बच्चा जब कि स्नान करके बड़ी तेजी से राजमार्ग को अपने मदगन्ध से आमोदित करते हुए लौट रहा था तब उसने अनेक पुरुषों से व्याप्त राजमार्ग में उत्तरीय वस्त्र से युक्त एक परिव्राजक को पकड़ लिया।

गणिका—हं, तदो तदो । [हं ततस्ततः ।]

चेटः—तदो मए हत्थिहत्थाभिहताडिअमाणो दन्तन्तरपरिवत्तमाणो हत्थिहत्थपडिदचरणो तदो हा हा विपाडिदो हा हा हदो त्ति जणवादे सवुत्ते तदो दिण्णकरप्पहारेण परिवत्तिअ हत्थिं करिअ मोइदो सो परिव्वाजो । [ततो मया हस्तिहस्ताभिताड्यमानो दन्तान्तरपरिवर्तमानो हस्तिहस्तपतितचरणः ततो हा हा विपाटितो हा हतः इति जनवादे संवृत्ते ततो दत्तकरप्रहारेण परिवर्तितं हस्तिनं कृत्वा मोचितः स परिव्राट् ।]

गणिका—पिअं मे । तदो तदो । [प्रियं मे । ततस्ततः ।]

पोतकम् तेन मगलहस्तिना = माङ्गलिककर्मसु उपयुक्तेन हेतुना अद्भुतमदगन्धम् प्रभूतेन मदेन गन्धम्—गन्धयुक्तम् राजमार्गम् राजकीयपथम् इत्यर्थः एवभूतेन भद्रकपोतकेन प्रमथित = परिव्राट् समासादित = प्राप्त ।

हस्तिहस्ताभिताड्यमान —हस्तिन = गजस्य हस्त शुण्डादण्ड तस्य आम दन = आघातेन ताड्यमान दन्तान्तरपरिवर्तमान —दन्तयो अन्तरम् = मध्यम् तत्र परिवर्तमान हस्तिहस्तपतितचरण —हस्तिहस्ते पतित तादृश चरण यस्य स करिकरगृहीतपाद इत्यर्थ । विपाटित = विदलित (परिव्राट् इति शेष) जनवादे—जनानाम् वाद = रव तस्मिन् प्रवृत्ते = उत्थिते सति दत्तकरप्रहारेण—दत्त करप्रहार येन तेन (मयाति शेष)

मे प्रियम् = मम प्रिय (वस्तु) जातम् इति भाव ।

गणिका—हाँ ! तब फिर क्या हुआ ?

चे —तब वह हाथी के दाँतों के आघात से पीड़ित होकर उसके दाँतों के भीतर आ गया । जब हाथी ने उसे सूँड़ के सहारे चरण से दबाना चाहा तब जनता का हाय ! हाय ! फाड़ दिया गया हाय ! हाय मारा गया —यह शब्द (नाद) हुआ । मैंने अपने हाथों के प्रहार के द्वारा उसकी स्थिति में परिवर्तन लाया और उस संन्यासी को बचाया ।

गणिका—मेरे लिए अच्छा हुआ (अर्थात् मेरा प्रिय ही हुआ) । तब फिर क्या हुआ ?

चेट —तदो सव्वो जणो भणादि—अहो चेडस्स कम्म त्ति। ण उण कोचि किं पि इच्छइ दाउं। तदो अज्जुए! केण वि कुलवुत्तेण उइदाणि आभरणट्ठाणाणि विलोइअ अङ्गुट्ठेणाणिअ वि उण अलद्ध पेक्खिअ दव्वं उवालभिअ दिग्घ णिस्ससिअ एत्तओ मे विभवो त्ति करिअ परिजणहत्थे अअ पावरओ पेसिदो। [तत सर्वो जनो भणति–अहो चेटस्य कर्मेति। न पुन कश्चित् किमपीच्छति दातुम्। ततोऽज्जुके! केनापि कुलपुत्रेणोचितान्याभरणस्थानानि विलोक्याङ्गुष्ठेनानीयापि पुनरलब्ध प्रेक्ष्य दैव मुपालभ्य दीर्घं निःश्वस्यैतावान् मे विभव इति कृत्वा परिजनहस्तेऽय प्रावारक प्रेषित ।]

भणति = कथयति, चेटस्य = वसन्तसेनाभृत्यस्य कर्म = वीरकर्म एतत् भवति, यत् परिव्राजक हस्तिहस्तात् रक्षित तत = तदनन्तरम् कुलपुत्रेण = कुलीनेन जनेन (आर्यचारुदत्तेन इति शेष) उचितान्याभरणस्थानानि—उचितानि, अभ्यस्तानि, चिरपरिचितानि आत्मन बहुमणिबन्धनानि आभरणस्थानानि = अलङ्कारधारणस्थानानि विलोक्य = तानि आभरणशून्यानि दृष्ट्वा अङ्गुष्ठेन = दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठेन (करणे तृतीया) 'कर्णादिस्थानानि' अलङ्कार अस्ति न वा इति ज्ञातुम् आनीय = सयत्नम् आकृष्य पुन आभरणम् अलब्धम् = अप्राप्त प्रेक्ष्य= विज्ञाय दैवम् उपालभ्य = तिरस्कृत्य दु खात् दीर्घं नि श्वस्य = दीर्घश्वास परित्यज्य 'एतावान् मे विभव इति कृत्वा' इति मत्वा परिजनहस्ते (अधिकरणविवक्षया सप्तमी वस्तुतस्तु तृतीया एव भवितुमर्हति) साधारणवस्तुदाने स्वय सङ्कुचित भृत्यहस्तेन प्रावारक = आत्मन उत्तरीयवस्त्रम् प्रेषित = वीरकर्मण पुरस्काररूप वस्त्राच्छम् प्रेषितवान्।

चेट—तब सब लोग एकत्रित हो गये और कहने लगे कि 'चेट का यह (अद्भुत) वीरतापूर्ण कार्य है'। किन्तु कोई कुछ देना नहीं चाहता था। तब माननीये! किसी कुलीन महानुभाव ने अन्य आभरणों के सुपरिचित स्थानों को शून्य देखकर अंगूठे के द्वारा अदृष्ट कर्णादिगत स्थानों को भूषण है या नहीं यह जानने के लिये खींचा, पर कुछ भी नहीं उपलब्ध हुआ। तब दैव को उपालम्भ देकर और लम्बी सांस लेते हुए 'मेरा वैभव इतना ही है'—ऐसा कहकर परिजन के हाथ में (सामान्य द्रव्य के दान देने में स्वयं सकुचित भाव से) देकर यह उत्तरीय वस्त्र भेज दिया।

गणिका—को णु खु अय्यचारुदत्तस्स गुणाणं अणुकरेदि । [को नु खल्वार्यचारुदत्तस्य गुणाननुकरोति ।]

चेटी—अज्जुए ! मम वि कोदूहलं अत्थि । को णु खु एसो । [अज्जुके ! ममापि कौतूहलमस्ति । को नु खल्वेष ।]

गणिका—केण वि साहुणा पुरुसेण होदव्वं । [केनापि साधुना पुरुषेण भवितव्यम् ।]

चेटी—साहु पुच्छीअदु दाव । [साधु पृच्छ्यतां तावत् ।]

गणिका—हञ्जे ! एकपुरुसपक्खवादिदा सव्वगुणाणं हन्ति । [हञ्जे ! एकपुरुषपक्षपातिता सर्वगुणान् हन्ति ।]

चेटी—भद्द ! से णामं तुवं जाणासि । [भद्र ! अस्य नाम त्वं जानासि ।]

चेट—ण हु जाणामि । [न खलु जानामि ।]

गणिका—अदिलहु तुए किदं । [अतिलघु त्वया कृतम् ।]

एकपुरुषपक्षपातिता—एकपुरुषे = चारुदत्तरूपे स्नेहविषयीभूते तादृशे एकपुरुषे पक्षपातिता = गुणपक्षपातिता अर्थात् को नु खल्वार्यचारुदत्तस्य गुणाननुकरोति इति कथनेन गुणपक्षपातिता सिद्ध्यति अत एव सर्वगुणाश्रय भाव्य इति गुणविषय एकान्तिदृष्टिदोषता सर्वगुणान् अन्यथो सर्वगुणान् हन्ति = असहनेन न मन्यति ।

अतिलघु = त्वया अतिशयेन लघु = हीनं कर्म कृतम् = आचरितम् यत त्वं तस्य नाम जिज्ञासयापि न जानासि ।

गणिका—(चेटी की ओर देखकर) सचमुच में यह कौन है जो आर्य चारुदत्त के गुणों का अनुकरण करता है ?

चेटी—माननीये ! मुझे भी कौतूहल हो रहा है । यह कौन है ?

गणिका—यह निश्चय ही कोई सत्पुरुष है ।

चेटी—अच्छा तब पूछना चाहिए ।

गणिका—माननीये ! एक पुरुष के गुणों के प्रति पक्षपात दूसरों के गुणों को सहन नहीं करता ।

चेटी (चेट के प्रति)—भद्र ! क्या आप उसका नाम जानते हैं ?

चेट—मैं नहीं जानता ।

गणिका—आपने ठीक नहीं किया ।

[illegible] । [[illegible]]

[illegible] आअच्छदि [illegible] । [[illegible]]

[illegible] । [[illegible]]

[illegible] । [[illegible]]

[illegible] ([illegible]) [illegible] । [[illegible]]

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

द्वितीयोऽङ्कः ।

[illegible] इति [illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] इति [illegible] ।

[illegible] ([illegible]) [illegible] ।

[illegible] ।

द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ।

[illegible] है ।

[illegible] जानता हूँ कि [illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] है ।

[illegible] ([illegible]) [illegible] रहे हैं [illegible] है । [illegible] आता है ।)

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥

अथ तृतीयोऽङ्कः

(तत प्रविशति नायको विदूषकश्च ।)

नायक —वयस्य ! वीणा नामासमुद्रोत्थित रत्नम् । कुत ,

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव
सङ्कीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी ।
क्रीडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता
स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकरी सपत्नी ॥ १ ॥

असमुद्रोत्थितम्—समुद्रात् उत्थितम् इति समुद्रोत्थितम् न तथा इति असमुद्रोत्थितम् । अर्थात् वीणा नाम रत्नमिव उत्तमवस्तु समुद्रस्तु रत्नाकर अस्त्येव परन्तु तदुत्पन्नरत्नात् अन्यत् रत्न भुवने अस्ति चेत् तत्तु वीणा एव इति तात्पर्यम् । कुत = कस्मात् हेतो एव कथिम इति चेत् ? तर्हि वीणाया गुणान् शृणु ।

उत्कण्ठितस्येति— वीणा उत्कण्ठितस्य = इष्टप्राप्त्यै व्याकुलीभूतस्य एव कृतनिश्चयस्य (जनस्य) हृदयानुगता—हृदयस्य हृदय वा अनुगता इति हृदयानुगता = मनोनुकूला सखीव विनोदकरी भवतीति भाव विषयेषु = भोग्यवस्तुषु सङ्कीर्णदोषेण रहिता गोष्ठी = सगीतपरिषद् इव अस्ति मदनव्यसनेषु—मदनस्य व्यसनानि तेषु अर्थात कामव्यापारेषु इत्यर्थ क्रीडारसेषु = कामलक्षणासु क्रीडासु कान्ता इव = स्वकीयवनिता इव रागवर्द्धिनी अस्ति तथैव स्त्रीणाम् कान्तरति

(इसके बाद नायक और विदूषक का प्रवेश)

नायक—वयस्य ! वीणा एक ऐसा रत्न है जो समुद्र से उत्पन्न नहीं हुआ है (समुद्र से चौदह रत्न उत्पन्न माने जाते हैं)।

क्योंकि—(वीणा) उत्कण्ठित जन के लिये मनोनुकूल सखी की भाँति भोग्य विषय में सङ्कीर्ण दोषरहित (वीणा पक्ष में कमसुरा दोष से रहित) गोष्ठी पक्ष में विषयान्तर = अस्पष्टता दोषरहित) गोष्ठी की तरह काम की रसभरी क्रीडाओं में कान्ता की भाँति और पति के प्रति स्त्रियों के प्रेम में विघ्न डालने वाली सपत्नी के समान है (वीणा के प्रति पुरुषों का विशेष आकर्षण पत्नियों को दुःखद होता है इसलिये वीणा से उनकी सपत्नी जैसी ईर्ष्या होती है) ॥ १ ॥

विदूषक—भो वअस्स ! को कालो किदपरिघोसणदाए णिस्सम्पादा राअमग्गा । कुक्कुरा वि ओसुत्ता । वअं णिद्दं ण लभामो । अण्णं च दाणि अच्छरीअं । इमं हदवीणं ण रमामि । अहिअदिढत्थाणे विच्छिण्णतन्तिआ होदु । [भो वयस्य ! कः कालः कृतपरिघोषणतया निःसम्पाता राजमार्गाः । कुक्कुरा अप्यवसुप्ताः । वयं निद्रां न लभामहे । अन्यच्चेदानीमाश्चर्यम् । इमां हतवीणां न रमे । अविक्लिष्टस्थाने विच्छिन्नतन्त्रीका भवतु ।]

नायक—वयस्य ! भावशावलेन बहुशः खल्वद्य मधुरं गीतम् । न च भवान् रमते ।

विदूषक—अदो एव्व एदं अहं ण रमामि । महुरं पि बहु खादिअ

विघ्नकरी = स्वामिप्रणयबाधिका सपत्नी इव भवति (यतः सा पुरुषाणाम् परमा कर्षिणी इत्यर्थः) ॥ १ ॥

कः कालः = कः कालो व्याप्येति भावः । कृतपरिघोषणतया—कृता परिघोषणा येषु, तेषां भावः तया । निःसम्पाताः—निर्गतः सम्पातः = गमनागमनम् यस्मात् ते । अर्थात् गमनागमनशून्याः राजमार्गाः = राजपथाः इत्यर्थः । अविक्लिष्टस्थाने = निरापदस्थाने इति भावः । विच्छिन्नतन्त्रीका = विच्छिन्ना श्लथीकृता तन्त्री यस्याः सा, अर्थात् श्लथतन्त्रीयुक्ता भवतु = तिष्ठतु इति आशयः ।

भावशावलेन—भावानां शावलेन = वैचित्र्येण । बहुशः = बहुवारमित्यर्थः ।

विदूषक—हे मित्र ! बहुत देर हुई, नगरपाल की घोषणा के बाद इस समय राजमार्ग जन-समागम से शून्य है । कुक्कुर भी सो गये हैं, किन्तु हम लोग आनन्द (अब भी) नहीं ले रहे हैं । दूसरा आश्चर्य यह है कि मैं इस वीणा में भी आनन्द नहीं ले रहा हूँ । अतएव इसे किसी निरापदस्थान में श्लथतन्त्रीयुक्त बनाकर रख दिया जाय (भावार्थ यह है कि किसी पक्की जगह पर पटककर इसकी तान तोड़ दी जाय) ।

नायक—मित्र ! वीणा ने अनेक भावों के कारण आज कई बार मधुर गान किया । किन्तु आप क्यों नहीं आनन्दित हो रहे हैं ?

विदूषक—इसीलिये तो मैं इसमें आनन्दित नहीं हूँ । (क्योंकि) मधुर

अजिण्णं होइ । [अत एवैतामहं न रमे । मधुरमपि बहु खादितमजीर्णं भवति ।]

नायक—सर्वथा सुव्यक्तं गीतम् । कुतः,

रक्तं च तारमधुरं च समं स्फुटं च
भावार्पितं च न च साभिनयप्रयोगम् ।
किं वा प्रशस्य विविधैर्बहु तत्तदुक्त्या
भित्त्यन्तरं यदि भवेद् युवतीति विद्याम् ॥ २ ॥

विदूषक—काम पससेदु भवं । मम खु दाव गाअन्तो मणुस्सो इत्थिआ वि पठन्ती उभअं आदरं ण देदि । गाअन्तो दाव मणुस्सो

रक्तेति—(तया = वीणया) रक्तम् = अनुरागपूर्णम् च तारमधुरम्—तारम् = उच्चैश्च च मधुरम् = श्रुतिसुखम् च इति तारमधुरम् अर्थात् उच्च तथा कोमलम् इत्यर्थः च समम् = वैषम्याभावम् स्वरतालसामञ्जस्यसंवलितम् वा स्फुटं च = प्रसन्नं सुव्यक्तं च भावार्पितम्—भावेन = अनुरूपभावेन अर्पितम् = युक्तम् इत्यर्थः अथवा अर्पितः = प्रदत्तः भावः = अनुरूपशृङ्गारादिभावः यत्र तथा च न साभिनयप्रयोगम् = अभिनयसंयुक्तमाभमित्यर्थः गीतम् वा तत्तत् बहुविधैः = नानाप्रकारैः उक्त्या किं भवेत् यदि मा भित्त्यन्तरं = कुड्यान्तरित यथा स्यात् तथा भवेत् तर्हि अहम् ताम् युवती इति विद्याम् = जानीयाम् । (अतः सामान्यतः पुरुषगीते स्वरकार्कश्यं जायते रमणीगीते तु समधिकमधुरता भवतीति भावः ।) ॥ २ ॥

पदार्थ भी अधिक मात्रा लेने पर अजीर्ण कर देता है। (तात्पर्य यह कि अनेकों बार का गाया हुआ अत्यन्त मधुर गीत भी उद्वेग को पैदा कर देता है।)

नायक—वीणा ने सब प्रकार से सुस्पष्ट गान किया है। क्योंकि—

रागयुक्त उच्च एवं मधुर वैषम्यरहित परिस्फुट भावपूर्ण तथा अभिनय प्रयोग से युक्त (गान किया है)। उपर्युक्त स्वरों को नाना प्रकार से कह-कहकर कहाँ तक प्रशंसा की जाय। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों दीवार की आड़ में कोई युवति ही गा रही हो ॥ २ ॥

विदूषक—आप भले ही प्रशंसा करें। किन्तु गाते हुए पुरुष या पढ़ती हुई स्त्री दोनों ही मेरे अनुराग को नहीं बढ़ा सकते। काकलीगान को धारण किए हुए

रत्तसुमणावेड्ढिदो विअ पुरोहिदो दिढं ण सोहइ। इत्थिआ वि पठन्ती छिण्णणासिआ विअ धेणुआ अदिविरूवा होइ। [कामं प्रशंसतु भवान्। मम खलु तावद् गायन् मनुष्यः स्त्र्यपि पठन्त्युभयमादरं न ददाति। गायंस्तावन्मनुष्यो रक्तसुमनोवेष्टित इव पुरोहितो दृढं न शोभते। स्त्र्यपि पठन्ती छिन्ननासिकेव धेनुरतिविरूपा भवति।]

नायक—सखे! उपारूढोऽर्धरात्रः। स्थिरतिमिरा राजमार्गाः। निस्सम्पातपुरुषत्वात् प्रसुप्तेवोज्जयिनी प्रतिभाति। कुतः,

असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं गतो ह्यष्टमपक्षचन्द्रः।
तोयावगाढस्य वनद्विपस्य विषाणकोटीव निमज्जमाना ॥ ३ ॥

आदरम् = प्रीतिम्। रक्तसुमनोवेष्टित—रक्ताश्च ते सुमनसश्च ताभिः वेष्टितः, रक्तपुष्पभूषित इत्यर्थः। छिन्ननासिका—छिन्ना नासिका यस्याः सा तथा।

अर्धरात्र—रात्रेः अर्धम् इति अर्धरात्रः। उपारूढः = सञ्जातः, उपस्थितो वा। स्थिरतिमिरा—स्थिरम् = घनं तिमिरम् = अन्धकारम् यत्र एवंभूता राजमार्गाः सन्ति। निःसम्पातपुरुषत्वात्—निरस्तः सम्पातः गमनागमनं यस्मात्, एवंभूतः पुरुषः यत्र, तेषां भावः तस्मात्, अर्थात् सर्वत्र पुरुषसंचाराभावात् इत्यर्थः।

असावित्ति—तोयावगाढस्य—तोये जले, अवगाढः = स्थितः तस्य, जलमग्नस्येत्यर्थः, वनद्विपस्य = वनगजस्य, निमज्जमाना = मज्जनशीला विषाणकोटीव = दन्ताग्रभाग इव, 'विषाणं स्यात्पशुशृङ्गेभदन्तयोः' इत्यमरः। असौ हि अष्टम-

पुरोहित की भांति गाता हुआ मनुष्य शोभा का पात्र नहीं होता और पाठ करती स्त्री भी कटी नासिका वाली गाय की तरह रूपहीन दिखाई पड़ती है।

नायक—मित्र आधी रात हो गई। राजमार्ग में घोर अन्धकार का साम्राज्य है। पुरुषों के गमनागमन के अभाव के हेतु मानों उज्जयिनी सोई हुई की तरह प्रतिभासित हो रही है।

क्योंकि—

वह अष्टमी का चन्द्रमा अन्धकार को अवकाश देकर अस्त हो रहा है। लगता है जैसे जल के भीतर डुबकी लगाने हुए वनैले हाथी के दांतों की कोटियाँ भी डूब गई हों (अष्टमी के चन्द्रमा की भी दो कोटियाँ होती हैं)॥ ३ ॥

विदूषक—सुट्ठु भवं भणादि । अन्तरिअमाणचन्दलद्धावआसो आदरदी विअ पासादादो अन्धआरो । [सुष्ठु भवान् भणति । अन्तर्धानेन्दुलब्धावकाशोऽवतरतीव प्रासादादन्धकारः ।]

नायक—(परिक्रम्य) इदमस्मदीयं गृहम् । वर्धमानक ! वर्धमानक !

विदूषक—वड्ढमाणअ ! वड्ढमाणअ ! दुवारं अवावुद । [वर्धमानक ! वर्धमानक ! द्वारमपावृणु ।]

(प्रविश्य)

चेट—अय्यो अय्यमेत्तेओ । [आर्यो आर्यमैत्रेय ।]

नायक—वर्धमानक !

चेट—अय्यो भट्टिदारओ । भट्टिदारअ ! वन्दामि । [आर्यो भर्तृदारकः । भर्तृदारक ! वन्दे ।]

नायक—पादोदकमानय ।

पक्षचन्द्र = शुक्लपक्षाष्टम्याः क्षीणचन्द्रः तिमिरावकाशः = अन्धकारप्रसारस्थानम् दत्त्वा अस्तं = तिरोहितं गतः ॥ ३ ॥

अन्तर्धानेन्दुलब्धावकाशः—अन्तर्धानश्चासौ चन्द्रश्च (अस्तंगतश्चन्द्र इत्यर्थः) तस्मात् लब्धः = प्राप्तः अवकाशः येन स तथा ।

पादोदकम् = चरणोदकम् ।

विदूषक—आपने ठीक कहा । अन्धकार मानो इस प्रासाद से उतर रहा है क्योंकि चन्द्रमा के अस्त होने से उसे अवसर उपलब्ध हो गया है ।

नायक—(घूम करके) यह हम लोगों का घर है । हे वर्द्धमानक ! हे वर्द्धमानक !

विदूषक—हे वर्द्धमानक ! हे वर्द्धमानक ! दरवाजा खोलो ।

(प्रवेश कर)

चेट—आर्य मैत्रेय यहाँ हैं ।

नायक—वर्द्धमानक !

चेट—भर्तृदारक भी यहाँ हैं । भर्तृदारक मैं आपकी वन्दना करता हूँ ।

नायक—पैर धोने के लिए जल लाओ ।

विदूषक—सुट्ठु भवं भणादि । अन्तद्धिअमाणचन्दलद्धावआसो ओदरदी विअ पासादादो अन्धआरो । [सुष्ठु भवान् भणति । अन्तर्धानचन्द्रलब्धावकाशोऽवतरतीव प्रासादादन्धकारः ।]

नायक—(परिक्रम्य) इदमस्मदीयं गृहम् । वर्धमानक ! वर्धमानक !

विदूषक—वड्ढमाणअ ! वड्ढमाणअ ! दुवारं अवावुद । [वर्धमानक ! वर्धमानक ! द्वारमपावृणु ।]

(प्रविश्य)

चेट—अम्मो अय्यमेत्तेओ । [अम्मो आर्यमैत्रेयः ।]

नायक—वर्धमानक !

चेट—अम्मो भट्टिदारओ । भट्टिदारअ ! वन्दामि । [अम्मो भर्तृदारक । भर्तृदारक ! वन्दे ।]

नायक—पादोदकमानय ।

पक्षचन्द्र = शुक्लपक्षात्मा क्षीणचन्द्र तिमिरावकारा = अन्धकारसमारम्भा नम् दत्त्वा अस्त = तिरोहित गत ॥ २ ॥

अन्तर्धानचन्द्रलब्धावकाश —अन्तर्धानप्राप्तो चन्द्रश्च (अस्तगतचन्द्र इत्यर्थः) तस्मात् लब्धः = प्राप्त अवकाश येन स तथा ।

पादोदकम् = चरणोदकम् ।

विदूषक—आपने ठीक कहा । अन्धकार मानो इस प्रासाद से उतर रहा हो क्योंकि चन्द्रमा के अस्त होने से उसे अवसर उपलब्ध हो गया है ।

नायक—(घूम करके) यह हम लोगों का घर है । हे वर्द्धमानक ! हे वर्द्धमानक !

विदूषक—हे वर्द्धमानक हे वर्द्धमानक ! दरवाजा खोलो ।

(प्रवेश कर)

चेट—आर्य मैत्रेय यहाँ हैं ।

नायक—वर्द्धमानक !

चेट—भर्तृदारक भी यहाँ हैं । भर्तृदारक मैं आपकी वन्दना करता हूँ ।

नायक—पैर धोने के लिए जल लाओ ।

चेट —(परिक्रम्य) इदं पादोदअं। (नायकस्य पादौ प्रक्षालयति।) [इदं पादोदकम् ।]

विदूषक —वड्ढमाणअ ! मम वि पादं पक्खालेहि ! [वर्धमानक ! ममापि पादं प्रक्षालय ।]

चेट —सुधोदेसु पादेसु भूमीए पलोट्टिदव्वं । उदअं विणासेहि। अहव आणेहि । पक्खालइस्सं । (नाट्येन विदूषकस्य पादौ प्रक्षालयति ।) [सुधौतयो पादयोर्भूम्या प्रलोठितव्यम् । उदकं विनाशय । अथवानय । प्रक्षालयिष्यामि ।]

विदूषक —ण केवलं दासीएपुत्तेण पादा धोदा, मुहं वि धोदं [न केवलं दास्या पुत्रेण पादौ धौतौ, मुखमपि धौतम् ।]

नायक —वयस्य !

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम् ।
अदृश्यमाना चपला जरेव या मनुष्यवीर्यं परिभूय वर्धते ॥ ४ ॥

सुधौतयो —सुष्ठु धौतौ सुधौतौ तयो पादयो = चरणयो सुधौतयो (सतो) भूम्या प्रलोठितव्यम् । उदकम् = जलम् ।

इयमिति—हि = यत नयनावलम्बिनी—नयने अवलम्बते या सा इयं निद्रा ललाटदेशात्=मस्तकस्थानात् , माम् उपसर्पति इव=हठात् आगत्य परिभवति इव, अदृश्यमाना चपला = कतिक्षणस्थायित्वेन चञ्चला, दुर्विनीता, अजेया इत्यर्थः,

---

चेट—(घूम करके) यह चरणोदक है । (नायक के चरणों को धोता है ।)

विदूषक—वर्द्धमानक ! मेरा भी पैर प्रक्षालन करो ।

चेट—(चारुदत्त का सेवक) अच्छी तरह धुले हुए पैरों को तो भूमिपर ही लोटना होगा। पानी खराब करो अथवा लाओ मैं पैरों को धो दूँ। (नाटकीय ढङ्ग से विदूषक के पैरों को धोता है ।)

विदूषक—दासीपुत्र ने केवल पैर ही नहीं धोए, अपितु मुख भी धो दिया ।

नायक—मित्र ! यह निद्रा आखों में लटकती हुई ललाट प्रदेश से उतरकर उसी प्रकार सता रही है जैसे अदृश्य और चञ्चल वृद्धावस्था मनुष्य की शक्ति को परास्त करके बढ जाती है ॥ ४ ॥

मैत्रेय ! सुप्यताम् ।

(निष्क्रान्तश्चेट: ।)

(प्रविश्याभरणसमुद्गहस्ता)

चेटी—अज्जमेत्तेअ ! उट्ठेहि उट्ठेहि । [आर्यमैत्रेय ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ।]

विदूषक:—भोदि ! किं एदं । [भवति ! किमेतत् ।]

चेटी—इमं सुवण्णभण्डं सट्ठीए सत्तमीए परिवेट्टामि । अट्ठमी क्खु अज्ज । [इदं सुवर्णभाण्डं षष्ठ्यां सप्तम्यां परिवर्तयामि । अष्टमी खल्वद्य ।]

नायक:—इदं तद् वसन्तसेनाया स्वकम् ।

चेटी—आम । भणादु भणादु भट्टिदारओ, गण्हदु त्ति । [आम । भणतु भणतु भर्तृदारक: गृह्णात्विति ।]

नायक:—मैत्रेय ! गृह्यताम् ।

विदूषक:—किं णिमित्तं अअं अलङ्कारो अब्भन्तरचउस्सालं ण प्पवेसीअदि । [निमित्तमयमलङ्कारोऽभ्यन्तरचतु:शालं न प्रवेश्यते ।]

जरा इव = वृद्धावस्था इव वा मनुष्यवीर्यम् = मनुष्यबलम् प्रमाणम् वा परिभूय = अभिभूय वर्धते पम = वृद्धिं प्राप्नोतीत्यर्थ: ॥ ४ ॥

आभरणसमुद्गहस्ता—आभरणस्य = अलङ्कारस्य समुद्गकम् 'पेटी' इति लोक प्रसिद्धम् तत् हस्ते यस्या सा तथा ।

अभ्यन्तरचतु:शालम्—चतसृणाम् शालानाम् समाहार इति चतु:शालम्

(जाता है) मैत्रेय ! सो जाओ । (वह बाहर चला जाता है ।)

(अलङ्कार की पेटी को हाथ में लिये हुए प्रवेश कर)

चेटी—आर्य मैत्रेय ! उठो उठो ।

विदूषक—माननीये ! यह क्या है ?

चेटी—यह सुवर्ण भाण्ड है षष्ठी तथा सप्तमी तिथि व्यतीत होने पर मैं इसे परिवर्तन कर देना चाहूँगी क्योंकि आज अष्टमी है ।

नायक—क्या यह वसन्तसेना की सम्पत्ति है ?

चेटी—हाँ भर्तृदारक (विदूषक से) कह कि इसे ले लें ।

नायक—मैत्रेय ! इसे ले लो ।

विदूषक—क्या कारण है कि यह अलङ्कार अन्त:पुर की चतु:शाला में नहीं रखा गया ?

नायक—मूर्ख ! बाह्यजनधारितमलङ्कारं गृहजनो न द्रक्ष्यति ।

विदूषक—का गई ! आणेहि गण्हामि चोरेहिं गणिहअमाणं । [गति । आनय गृह्णामि चोरैर्गृह्यमाणम् ।]

(चेटी दत्त्वा निष्क्रान्ता ।)

विदूषक—भो ! किंणिमित्तं सो पावरओ तस्स गणिआपरिआअस्स दिण्णो । [भो ! किंनिमित्तं स प्रावारकस्तस्मै गणिकापरिचारकाय दत्त ।]

नायक—सानुक्रोशतया ।

विदूषक—इह वि साणुक्कोसदा ! [इहापि सानुक्रोशता ।]

नायक—वयस्य ! मा मैवम् ।

अभ्यन्तरे अभ्यन्तरस्य वा चतु शालम् इति तथा ।

'बाह्यजन' इति पदेन 'गणिका' (वसन्तसेना) व्यन्यते । 'गृहजन' इति पदेन चारुदत्तस्य पत्नी 'ब्राह्मणी' आक्षिप्यते । अत एव आह—बाह्यजनेन धारितम् एवभूतम् अलङ्कार गृहजन = मम भार्या यथा न द्रक्ष्यति, (अत एव आभ्यन्तरचतु शालम् न प्रवेश्यते इति भाव) ।

सानुक्रोशतया—अनुक्रोशेन = अनुकम्पया सह वर्तमान इति सानुक्रोश, तस्य भाव तया, दयाभावेन इत्यर्थ ।

नायक—मूर्ख ! बाह्यजन (वेश्या) के द्वारा धारण किए जानेवाले अलङ्कार को मेरी पत्नी नहीं देख सकेगी ।

विदूषक—दूसरा रास्ता ही क्या है (अर्थात् दूसरा उपाय क्या है ?) । लाओ, चोरों के द्वारा ग्रहण करने योग्य इस अलकार को ग्रहण करता हूँ । (चेटी आभूषण देकर चली जाती है ।)

विदूषक—भो ! वह उत्तरीय गणिका के भृत्य (कर्णपूरक) को क्यों दिया गया ?

नायक—दया भाव से ।

विदूषक—क्या इसमें भी दया भाव है ?

नायक—मित्र ! ऐसा न कहो ।

विदूषक—अह भरिदगद्दभो विअ भूमीए पलोट्टामि। [अहं भरित गर्दभ इव भूम्यां प्रलुठामि ।]

नायक—निद्रा मां बाधते । तूष्णीं भव ।

विदूषक—सअदु भवं सुहप्पबोहाअ । जाव अहं पि सुविस्सं । [शेतां भवान् सुखप्रबोधाय । यावदहमपि स्वप्स्यामि

(द्वावपि स्वपित ।)

(तत प्रविशति सज्जलक ।)

सज्जलक—एष भो !

कृत्वा शरीरपरिणाहसुखप्रवेशं
शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम् ।

भरितगर्दभ इव—भर संजात अस्य इति भरित भरितश्चासौ गर्दभश्च इति भरितगर्दभ तद्वत् भूम्याम् प्रलुठामि ।

सुखप्रबोधाय = सुखपूर्वकं यथा स्यात् तथा जागरणाय इत्यर्थ ।

भो ! इति विस्मयसूचकमव्ययम् ।

कृत्वेति—(एषोऽहम्) शिक्षाबलेन—शिक्षाया बलेन = सामर्थ्येन चातुर्येण वा बलेन = शारीरबलेन च शरीरपरिणाहसुखप्रवेशम्—शरीरस्य = देहस्य परिणाह = विशालता परिणाहो विशालता इत्यमर इति शरीरपरिणाह तस्य सुखप्रवेश सुखेन प्रवेश यस्मात् तम् (अनायासेन निर्गमप्रवेशयोग्यम् इत्यर्थ) एतादृशम् कर्ममार्गम्—कर्मण = चौर्यकर्मण मार्गम् = सन्धिच्छेदम् सुरङ्गम् वा

विदूषक—मैं बोझा लिए हुए गधे की भांति भूमि पर लोट रहा हूँ।

नायक—नींद मुझे सता रही है । चुप रहो ।

विदूषक—आप सुखपूर्वक जागने के लिए सो जायें । तब तक मैं भी सो जाता हूँ (दोनों सो जाते हैं ।)

(तब सज्जलक का प्रवेश)

सज्जलक—ओ !

शिक्षाबल से तथा शारीरिक बल के द्वारा विशाल शरीर के प्रवेश योग्य सुरङ्ग बनाकर भूमि पर परिसर्पण करने से कठोर पार्श्वभागवाला मैं कञ्चुक से

गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो
निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः ॥ ५ ॥

भोः ! वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धिं छित्त्वा प्रविष्टोऽस्मि । यावदिदानीं चतुःशालमुपसर्पामि । (सनिर्वेदं विचिन्त्य) भोः

कामं नीचमिदं वदन्तु विबुधाः सुप्तेषु यद्वर्तते
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभवः शौर्यं न कार्कश्यता ।

कृत्वा = विधाय भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वः —भूमौ = सुरङ्गभूमौ परिसर्पणम्=शयित सन् अग्रे गमनम् इत्यर्थः, तेन घृष्टौ = प्राप्तघर्षणौ पार्श्वौ यस्य सः । निर्मुच्यमानः = कञ्चुकेन कञ्चुकात् वा हीयमानः सन् अतएव जीर्णतनुः = जीर्णा = जराजर्जरा तनुः शरीरम् यस्य सः भुजङ्गः इव = सर्पः इव गच्छामि = धीरं यथा स्यात् तथा प्रविशामि इत्यर्थः ॥ ५ ॥

सन्धिं छित्त्वा = छेदनकर्मणा सुरङ्गादिमार्गं सम्पाद्य अहम् प्रविष्टोऽस्मि इति भावः । सनिर्वेदम्—निर्वेदेन = दुःखेन सह वर्तमानं यथा स्यात् तथा विचिन्त्य = चिन्तयित्वा (सङ्कलकः आह)

काममिति—यत् = चौर्यादिकम् सुप्तेषु = निद्रावस्था गतेषु जनेषु वर्तते = क्रियते इत्यर्थः, इदम् = कर्म विबुधाः = पण्डिताः कामम् = यद्यपि, यद्यपि नीचम् = निकृष्टम् , पातकं वा वदन्ति = कथयन्ति । हि = यतः वि[illegible]सितेषु, विश्रम्भयुक्तेषु वा वञ्चनापरिभवः —वञ्चनया = कपटरीत्या, प[illegible] अनादरः धर्षणं वा शौर्यम् = वीरस्य कर्म न = नास्ति । अपितु कार्[illegible]

मुक्त जीर्ण शरीरवाले (वृद्ध) सर्प की[illegible]
(आगे) जाता हूँ ॥ ५ ॥

भो ! मैंने वृक्षवाटिका वाले द्वार में[illegible]
इस समय चतुःशाला में प्रवेश करता[illegible]

लोगों के सो जाने पर जो (चौरा[illegible]
निकृष्ट (कर्म) कहते हैं । क्योंकि वि[illegible]
जाता है वह वीर कार्य नहीं, अपितु क्रू[illegible]

गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो
निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः ॥ ५ ॥

भोः ! वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धिं छित्त्वा प्रविष्टोऽस्मि । यावदि दानीं चतुःशालमुपसर्पामि । (सनिर्वेदं विचिन्त्य) भोः

कामं नीचमिदं वदन्तु विबुधाः सुप्तेषु यद्वर्तते
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभवः शौर्यं न कार्कश्यता ।

कृत्वा = विधाय भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वः —भूमौ = सुरङ्गभूमौ परिसर्पणम्=शयित सन् अग्रे गमनम् इत्यर्थः, तेन घृष्टौ = प्राप्तघर्षणौ पार्श्वौ यस्य स । निर्मुच्यमानः = कञ्चुकेन कञ्चुकात् वा हीयमानः सन् अतएव जीर्णतनुः = जीर्णा = जराजर्ज तनुः शरीरम् यस्य स भुजङ्ग इव = सर्प इव गच्छामि = धीरं यथा स्यात् त प्रविशामि इत्यर्थः ॥ ५ ॥

सन्धिं छित्त्वा = छेदनकर्मणा सुरङ्गादिमार्गं सम्पाद्य अहम् प्रविष्टोऽस्मि इ भाव । सनिर्वेदम्—निर्वेदेन = दुःखेन सह वर्तमानं यथा स्यात् तथा विचिन्त्य = चिन्तयित्वा (सशङ्क आह)

काममिति—यत् = चौर्यादिकम् सुप्तेषु = निद्रावस्था गतेषु जनेषु वर्तते = क्रियते इत्यर्थः, इदम् = कर्म विबुधाः = पण्डिताः कामम् = यद्यपि, यथेष्ट नीचम् = निकृष्टम्, पातकं वा वदन्ति = कथयन्ति । हि = यतः विश्वस्तेषु = स्निग्धेषु, विश्रम्भयुक्तेषु वा वञ्चनापरिभवः—वञ्चनया = कपटरीत्या, परिभवः अनादरः घर्षणं वा शौर्यम् = वीरस्य कर्म न = नास्ति । अपितु कार्कश्य = क्रू

मुक्त जीर्ण शरीरवाले (वृद्ध) सर्प की भांति (धीरे-धीरे) प्रवेश करता (आगे) जाता हूँ ॥ ५ ॥

भो ! मैंने वृक्षवाटिका वाले द्वार में सुरङ्ग बनाकर प्रवेश किया है । तब त इस समय चतु शाला में प्रवेश करता हूँ । (दुःखपूर्वक सोचकर) भो !—

लोगों के सो जाने पर जो (चौरादि कर्म) किया जाता है, उसे पण्डित लो निकृष्ट (कर्म) कहते हैं । क्योंकि विश्वस्तजन का छल द्वारा जो अपमान किय जाता है वह वीर-कार्य नहीं, अपितु क्रूरकर्म ही कहा जाता है । तथापि निन्दनी

स्वाधीना वचनीयतापि तु वरं बद्धो न सेवाञ्जलि
मार्गश्चैष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना ॥ ६ ॥

(विचिन्त्य)

लुब्धोऽर्थवान् साधुजनावमानी वणिक् स्ववृत्तावतिक्रमाश्च ।
यस्मस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये भवामि तु स्वापहृतो न चित्ते ॥७॥

च भवति । (तथापि) वचनीयतापि = निन्दा अपि स्वाधीना = स्वातन्त्र्य गुणयोगिना वरम् = मनाक् प्रिया भवति तु = किन्तु बद्ध सेवाञ्जलि = दास्य भावेन भवार्थं स्त्रालावलि प्रणामाञ्जलिरस्तु न वरं स्यात् = मनागपि न इष्यते । अयान परमाम्योपजीवनापेक्षया चौर्यादिनीचकर्मभिरपि स्वातन्त्र्येण जीवनम् इति आशयः । पूर्वम् = द्वापरयुगे एव महाभारतकाले वा एष मार्ग = बधादिनिन्द्यकर्ममार्ग नरेन्द्रसौप्तिकवधे सुप्त भव इति सौप्तिक नरेन्द्राणां सौप्तिक अथवा नरेन्द्राश्च ते सौप्तिकाश्च तेषाम् वध तस्मिन् अर्थात् विश्रान्तनिद्राकाले धृष्टद्युम्नादिनृपाणाम् वध स्वरूप द्रौणिना द्रोणपुत्रेण अश्वत्थाम्ना कृत = अनुष्ठित आचरित । (अतएव अहमपि चौर्यकर्म करिष्य इति अनुमितिमि आचरितत्वात्) ॥ ६ ॥

लुब्ध इति । य लुब्ध = पदद्रव्यलोभी अर्थवान = धनवान अथ च साधुजनावमानी अथ वणिक = व्यवसायी स्ववृत्तावतिक्रमाश्च—स्ववृत्तौ = स्वव्यवसाय व्यापारे अतिक्रमाश्च = धनाढ्यमान् कुत्रेश्च तस्य = एतयो द्वयो एकतरस्य अस्य गेहम् = गृहम् यदि नाम लप्स्ये = यदि वा प्रविशामि तदा चित्ते = मनसि दुःखोपहृतो न भवामि ॥ ७ ॥

तथा स्वाधीन चौर्यादि वृत्ति, सेवा के निमित्त हाथ जोड़ने की अपेक्षा कुछ अच्छा [illegible] है । प्राचीनकाल (महाभारतकाल) में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने विश्राम एवं निद्रामग्न द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के वध करने में इसी क्रूरकर्म का अनुसरण किया था ॥ ६ ॥

(चौर्यादि विषय में विशेष चिन्ता करके)

यदि मैं लोभी धनी अथवा निर्धन के दूसरे (व्यक्ति) या निज व्यवसाय में कठोर (अनम्र) वणिक् के घर में प्रवेश करता हूँ तो अपने मन में कभी भी दुःखी नहीं होऊँगा ॥ ७ ॥

यद्वा तद्वा भवतु । किं वा न कारयति मन्मथः । यावदारभे कर्म । भोः !

देशः को नु जलावसेकशिथिलश्छेदादशब्दो भवेद्
भित्तीनां क नु दर्शितान्तरसुखः सन्धिः करालो भवेत् ।
क्षारक्षीणतया चलेष्टककृशं हर्म्यं क जीर्णं भवेत्
कुत्र स्त्रीजनदर्शनं च न भवेत् स्वन्तश्च यत्नो भवेत् ॥८॥

(परिक्रम्य) इयं वास्तुविभागक्रिया । सोपस्नेहतया गृहविशिष्ट-

देश इति—भित्तीनाम् = प्राकाराणाम् क नु देशः = स्थानम् जलावसेकशिथिलः—जलानाम् = वृष्ट्यादिजलानाम् अवसेकः = पतनम् तेन शिथिलः = कोमलः सन् छेदात् सुरङ्गादिनिर्माणसमये अशब्दः = खटखटाशब्दरहितः भवेत्, क नु सन्धिः = रन्ध्रम् (सेंध इति लोकभाषायाम्) दर्शितान्तरसुखः—दर्शितम् अन्तरम् अभ्यन्तरं येन, तादृशश्च सुखकरश्च सन् करालः = अभूतपूर्वदर्शनीयत्वेन विशालः, भयङ्करो वा भवेत् । क्षारक्षीणतया—क्षारेण = क्षारमृदा, लवणेन वा क्षीणतया = क्षीणताहेतोः, शिथिलतया वा चलेष्टककृशम्—चलम् इष्टकम्, तेन कृशम् = ह्रासप्रासम् अर्थात् कृशं च क्षीणं च एवभूतं हर्म्यम् = भवनम् क = कुत्र जीर्णम् भवेत् = भग्नप्रायम् अतएव सुखपूर्वकं छेदनयोग्यं च भवेत्, कुत्र चानभिप्रेतम् स्त्रीजनदर्शनम्—स्त्रीजनानाम् दर्शनम् = साक्षात्कारः च न भवेत् तथा मम यत्नः = चौर्यरूपोपायः, स्वन्तः = फलप्रदः भवेत् ॥ ८ ॥

वास्तुविभागक्रिया—'वास्तु' इति पदेन वास्तुगृहं परामृश्यते अतः वास्तुन =

जो कुछ भी हो। कामदेव मनुष्य से क्या नहीं करा लेता ? तब तक मैं अपना कार्य आरम्भ करता हूँ।

सज्जल्प—यहाँ दीवार का कौन स्थान वर्षा आदि जल से नरम हो गया है जिससे छेदन के समय शब्द न हो सके, अथवा कहाँ पर छेद (सुरङ्ग) विशाल होगा जिसके द्वारा भीतर की सारी चीजें सरलता से दिखाई पड़ें भवन की किस स्थान पर भित्ति जीर्ण एवं क्षार (लौना) लगने के कारण नष्ट होकर शिथिल पड़ गई है, कहाँ पर स्त्रियाँ देख न सकेंगी। और (इसी बीच में) मेरा यत्न भी सफल हो जाय ॥ ८ ॥

(घूमकर) यहाँ मकान की दर्ज है (रद्दों के या ईंटों के बीच का अवकाश)।

इवाय भवनविन्यासः । इह तावत् प्रवेशावकाशं करिष्ये । भोः ! कीदृशं इदानीं सन्धिच्छेदं कर्तव्यं स्यात् ।

सिंहाक्रान्तं पूर्णचन्द्रं झषास्यं चन्द्रार्धं वा व्याघ्रवक्त्रं त्रिकोणम् ।
सन्धिच्छेदः पीठिका वा गजास्यमस्मत्पश्या विस्मितास्ते कथं स्युः ॥९॥

भवतु, सिंहाक्रान्तमेव च्छेदयिष्ये ।

विदूषकः—भो ! जागन्ति खु सव्वे, णहि । [भो ! जागर्ति खलु भवान्, न हि ।]

नायकः—किमर्थम् ।

विदूषकः—अह खु दाव कत्तव्वकरत्थीकिदसङ्केदो विअ लक्खिअस

वास्तुगृहस्य विभागक्रिया इत्यमन रस्यते इति भावः । सौम्यस्नेहस्तया = स्निग्धतया इत्यर्थः । भवनविन्यासः = भवनस्य विन्यासः = सन्निवेशः गृहविशिष्ट इव विशिष्ट गृह यत्र तादृशं अपि सूचयति इति भावः ।

सिंहेति—सिंहाक्रान्तः, पूर्णचन्द्रः झषास्यः चन्द्रार्धं वा व्याघ्रवक्त्रं त्रिकोणं पीठिका गजास्यम् इति वा (कतमः) सन्धिच्छेदः स्यात् कथं वा अस्मत्पश्याः ते (जनाः) विस्मिताश्च स्युः (अर्थात् सुरङ्गादिमार्गनिर्माणविधौ मम कर्मकौशलदर्शनात् आश्चर्यान्विता वा स्युः ।) ॥ ९ ॥

कत्तव्वकरत्थीकिदसङ्केत—कर्तव्यं करोतीति कर्तव्यकरः तस्य स्त्री तया कृत

नमी के कारण इस घर का बनाव कुछ विशेष प्रकार का है । यहीं पर प्रवेश के उपयुक्त सुरङ्ग बनाऊंगा । भो ! यहाँ कैसा सुरङ्ग बनाना उचित होगा ?

सिंह की उछाल के समान आकृति की या पूर्णचन्द्राकार जैसी मकर के मुख की तरह की अथवा अर्धचन्द्राकार सरीखी; व्याघ्र के मुख की भांति अथवा तिकोनी चौकोनी (पीठिका) या गज के मुख की आकृति वाली सुरङ्ग हो जिससे चौरकाय में दक्ष लोग भी (मेरे सुरङ्ग-निर्माण की कला से) आश्चर्यित हो जायँ ॥ ९ ॥

अच्छा सिंहाक्रान्त नामक सुरङ्ग का ही निर्माण करूँगा ।

विदूषक—भो ! क्या आप जाग रहे हैं या नहीं ?

नायक—किसलिए ?

विदूषक—न भक्त हूँ की स्त्री के द्वारा सङ्केत-स्थल पर बुलाये गये बौद्ध संन्यासी

मणओ णिद्दं ण लभामि। वामं खु मे अक्खि फन्देदि। चोरो सन्धि छिन्ददी विअ पेक्खामि। जइ ईदिसी अवत्था अत्थाणं, जादीए दरिद्दो एव्व होमि। [अहं खलु तावत् कर्तव्यकरणीकृतसङ्केत इव शाक्यश्रमणको निद्रां न लभे। वामं खलु मेऽक्षि स्पन्दते। चोरं सन्धि छिन्दन्तीव पश्यामि। यदीदृश्यवस्थाऽर्थानां, जात्या दरिद्र एव भवामि।]

नायक—मूर्ख ! धिक् त्वाम् ! दारिद्र्यमभिलषसि।

सज्जलक—अथ केनेदानीं सन्धिच्छेदमार्गं सूचयितव्यं स्यात्। नन्विदं दिवा ब्रह्मसूत्रं रात्रौ कर्मसूत्रं भविष्यति।

अद्यास्य भित्तिषु मया निशि पाटितासु
छेदात् समासु सकृदर्पितकाकलीषु।
काल्यं विषादविमुखः प्रतिवेशवर्गो
दोषांश्च मे वदतु कर्मसु कौशलं च ॥ १० ॥

तादृश सङ्केत=समयनिर्देशः यस्य यस्मै वा तथा। शाक्यश्रमण=बौद्धश्रमणक।

सूचयितव्य = परिमातव्यं स्यात्। ब्रह्मसूत्रम् = उपवीतम्।

अद्येति—अद्य अस्य = गृहस्य भित्तिषु निशि = रात्रौ मया पाटितासु, छेदात् = छेदं प्राप्य अपि सकृदर्पितकाकलीषु—सकृत् अर्पिता काकली यत्र तासु अर्थात् सकृत् काकलीयन्त्रेण आहतासु अतश्च, समासु = रम्यासु सतीषु काल्यम् = कल्यमित्यर्थः। विषादविमुख—विषादेन विमुखः = विवर्णमुखः, प्रतिवेशवर्ग = शत्रुवेश्यावर्गः मे = मम दोषान् वदतु कर्मसु कौशलं च वदतु ॥ १० ॥

की भाँति निद्रा का आनन्द नहीं ले रहा हूँ और मेरी बाई आँख फड़क रही है। मुझे ऐसा लगता है कि चोर (मेरे घर में) सुरङ्ग बना रहा हो। यदि धन की यही हालत है, तब तो मैं जन्मना या स्वभावत दरिद्र ही होना चाहूँगा।

नायक—मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है। क्यों तुम दरिद्रता को पसन्द करते हो ?

सज्जलक—इस समय मैं किससे सुरङ्गमार्ग की माप करूगा ! अथवा यह ब्रह्मसूत्र रात्रि में कर्मसूत्र होगा (अर्थात् यज्ञोपवीत द्वारा माप करूँगा)।

आज रात्रि में इस घर के दिवाल में छेद कर दिया, काकलीयन्त्र (खनती) के एक ही वार के आघात से यह मनोरम सुरङ्ग बन गया। प्रातःकाल प्रसन्न होकर पड़ासी लोग मेरे दोषों का तो बखान करेंगे ही साथ ही साथ मेरे कार्य-कौशल की भी प्रशंसा करेंगे ॥ १० ॥

नमः खरपटाय । नमो रात्रिगोचरेभ्यो देवेभ्यः । (तथा करोति ।) हन्त अवसितं कर्म । प्रविशामस्तावत् । (प्रविश्य) अये ! ज्वलति दीपः । अपसरामि तावत् । धिक्, सज्जलक सत्यदम् ।

मार्जारः प्लवने वृकोऽपसरणे श्येनो गृहालोकने
निद्रा सुप्तमनुष्यवीर्यतुलने ससर्पणे पन्नगः ।
माया वर्णशरीरभेदकरणे वाग् देशभाषान्तरे
दीपो रात्रिषु सङ्कटे च तिमिरं वायुः स्थले नौर्जले ॥ ११ ॥

हन्त इति हर्षे । कर्म = छेदनकर्म अवसितम् = समाप्तम् । अतएव गृहे प्रविशाम इत्यर्थः ।

मार्जार इति—(अहम्) प्लवने = उत्प्लुत्य पलायनविषये मार्जारः = बिडालतुल्यः ओतुर्बिडाल मार्जारः इत्यमरः अपसरणे = द्रुतगमने वृकः गृहावलोकने = गृहस्थवस्तुदर्शनविषये श्येनः (बाजपक्षी) तद्वत् चरदृष्टिः सुप्तमनुष्यवीर्यतुलने—सुप्तमनुष्याणाम् वीर्यम् तस्य तुलने = परिमापने निद्रा यतः सा हि मनुष्यवीर्यम् कीदृक इति जानाति इति भावः । देशभाषान्तरे = विभिन्नदेशभाषाविषये वाक् = वाग्देवी सरस्वती भवामि (तथा) अहं रात्रिषु = रजनीषु दीपः = आलोकः अर्थात् दीपतुल्यः वस्तुदर्शनसमर्थः सङ्कटे = विपत्काले तिमिरम् = लौकिकपदार्थानां तिरोधानसामर्थ्यात् अन्धकार इव स्थले = भूमौ वायुः = तत्तुल्यः सर्वत्रगः दक्षः दक्षः जले च नौः = नौका इव भवामि ॥११॥

खरपट को नमस्कार । रात्रि के देवता को नमस्कार । (वैसा वह करता है ।) वाह ! छेदन कर्म समाप्त हो गया । तब प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश करके) अरे ! दीपक जल रहा है । तब तक हट जाता हूँ । मुझे धिक्कार है मैं सचमुच में सज्जलक हूँ ।

मैं कूदकर भागने में मार्जार, द्रुत गमन में वृक, गृह के वस्तुओं को अवलोकन करने में बाज, सुप्तमनुष्य के वीर्य (बल) को मापने में निद्रादेवी, चलने में सर्प के तुल्य, स्थूल शरीर के विश्लेषण करने में माया, देश देशान्तर की विभिन्न भाषा के विषय में विद्यादेवी (सरस्वती) रात्रि में दीप, आपत्तिकाल में अन्धकार तुल्य (अदृश्य) स्थल (पृथ्वी) पर वायु और जल में नौका की भाँति हूँ ॥११॥

(सर्वतो विलोक्य) आगन्तुकत्वादविदितसमृद्धिविस्तर केवलं भवन-प्रत्ययादिह प्रविष्टोऽस्मि । न चेदानीं कञ्चित् परिच्छदविशेषं पश्यामि । किन्तु खलु ,दरिद्र एवायम् । उताहो अयं सयमननिरर्थकं द्रष्टव्यं धारयति । अथवा, अभिजातोऽयं भवनविन्यासः । उपभुक्तप्रनष्टविभवे-नानेन भवितव्यम् ।

तथा विभवमन्दोऽपि जन्मभूमिव्यपेक्षया ।
गृहं विक्रयकालेऽपि नीलस्नेहेन रक्षति ॥ १२ ॥

आगन्तुकत्वात् = वैदेशिकत्वात् अविदितसमृद्धिविस्तर —अविदित = अज्ञात समृद्धिविस्तर = ऐश्वर्यप्रसर येन । किन्तु भवनप्रत्ययात् = रमणीय-भवनदर्शनात् अत्र ईप्सितम् , अस्ति इति हेतो प्रविष्टोऽस्मि । सयमननिरर्थ-कम्—सयमनेन = भूमौ स्थापनादिना निरर्थकम् = निष्प्रयोजनम् अभिजात = मनोरम उपभुक्तप्रनष्टविभव —पूर्वमुपभुक्त पश्चात् प्रनष्ट इति उपभुक्तप्रनष्ट विभवः यस्य तादृशेन भवितव्यमित्यर्थ ।

तथेति—तथा = अनेन नष्टविभवप्रकारेण अयं गृहस्वामी विभवमन्द अपि= क्षीणविभवोऽपि विक्रयकाले = दारिद्र्यात् गृहविक्रयकाले समुपस्थितेऽपि जन्मभूमि-व्यपेक्षया—स्वकीयजन्मभूमौ व्यपेक्षया = अनुरागेण इत्यर्थ । गृहं नीलस्नेहेन = गाढस्नेहेन 'नीलीराग स्थिरप्रेमा' इति यादव , रक्षति ॥ १२ ॥

(चारों ओर देखकर) आगन्तुक होने के नाते मुझे इस घर की सम्पत्ति के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है । केवल सुन्दर भवन को देखकर मैंने प्रवेश किया है । परन्तु कोई विशेष पोशाक नहीं देख रहा हूँ । क्या यह सचमुच में दरिद्र है ? अथवा यह सयम के द्वारा (बहुमूल्यवान वस्तुओं को भूमि में गाड़कर) निरर्थक वस्तु को ही बाहर रखकर रखा करता है । अथवा यह रमणीय भवन विन्यास, इस बात का साक्षी है कि यह (व्यक्ति) किसी समय धन का उपभोग कर चुका है, बाद [redacted] विभवहीन हो गया है ।

इस प्रकार निर्धन होकर भी यह गृहस्वामी केवल जन्मभूमि की ममता से इस घर की रक्षा कर रहा है अन्यथा ऐसी हालत [redacted] उसे यह घर बेच देना चाहिये था ॥ १२ ॥

भवतु पश्यामस्तावत् । अथवा, न खलु मे तुल्यावस्थः कुलपुत्र पीडयितव्यः । गच्छामि तावत् ।

विदूषक—भो ! गण्ह एदं सुवण्णभण्डअं । [भो ! गृहाणैतत् सुवर्णभाण्डम् ।]

शर्विलक—कथं सुवर्णभाण्डमित्याह । किं मां दृष्ट्वाऽभिभाषते । आहोस्वित् सत्त्वलाघवात् स्वप्नायते । भवतु पश्यामस्तावत् । (दृष्ट्वा) भूतार्थं सुप्त पर्यायम् । तथाहि,

निःश्वासोऽस्य न शङ्कितो न विषमस्तुल्यान्तरं जायते
गात्रं सन्धिषु दीर्घतामुपगतं शय्याप्रमाणाधिकम् ।
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न चपलं पक्ष्मान्तरं जायते

सत्त्वलाघवात्—सत्त्वस्य = मनसः लाघवम् दौर्बल्यम्, तस्मात् क्षीणबलत्वात् इत्यर्थः ।

निःश्वास इति—अस्य निःश्वासः न शङ्कितः = न शङ्कान्वकः शङ्काहेतुः (जागरणस्येति भावः) न विषमः परन्तु तुल्यान्तरं = तुल्यसमं यथा स्यात् तथा जायते गात्रं सन्धिषु = जान्वादिसन्धिषु दीर्घतामुपगतम् = सुप्रसारणात् दीर्घं सत् । शय्याप्रमाणाधिकम्—शय्यायाः प्रमाणम् इति शय्याप्रमाणम् तस्मात् अधिकम् = बहिर्भूतम् च प्रतीयते दृष्टिः = नेत्रम् गाढम् = अत्यन्तम् निमीलिता =

अच्छा तब तक देखता हूँ । अथवा मेरे समान दरिद्र इस कुलीन व्यक्ति को कष्ट नहीं दूँगा । तब मैं जाता हूँ ।

विदूषक—भो ! इस सुवर्णभाण्ड को ग्रहण करो ।

शर्विलक—क्यों सुवर्णभाण्ड की (चर्चा) करता है ? क्या मुझे देखकर कह रहा है ? अथवा दुर्बल मन के कारण स्वप्न देख रहा है अच्छा तब तक देखता हूँ । (देखकर) यह सचमुच में सोया है ।

क्योंकि—इसका श्वास निःशङ्क होकर सम एवं सुस्वरूप से चल रहा है । शरीर की सन्धियों में फैलाव के कारण दीर्घता आ गई है एवं शय्या के प्रमाण से वे अधिक लम्बी हो गई हैं । आँखें बन्द हैं एवं पलकें भी निश्चल हैं । यदि

दीपं चैव न मर्षयेदभिमुखः स्याल्लक्षसुप्तो यदि ॥ १२ ॥

क[illegible] खलु तत् । अये जर्जरप्रावरणैकदेशो दीपप्रभाव्यक्तीकृतरूपं दृश्यते । सुपरिगृहीतमनेन । अयमत्र प्राप्तकालः । इमे मया गृहीताः शलभाः । दीपनिर्वापणार्थमेकं मुञ्चामि । (भ्रमरकरण्डकादेकं मुञ्चति ।) अये एष दीप निर्वाप्य पतति ।

विदूषक—अविहा णिव्वाविदो दीवो दाणिं । मुसिदो म्हि । भो चारुदत्त ! गण्ह एदं सुवण्णालङ्कारं । अहं खु भीदीए उप्पहप्पवुत्तो विअ वणिजो णिद्दं ण लभामि । मम बम्हण्णेण साविदो सि, जइ ण गण्हसि । [अविहा निर्वापितो दीप इदानीम् । मुषितोऽस्मि । भोश्चारुदत्त !

सम्पुटिता पक्ष्मान्तरम् = नेत्रलोमस्थानम् चपल न जायते, यदि एष लक्षसुप्त = व्याजसुप्त भवेत् तदा अभिमुखम् = पुरोवर्तमानम् स दीपम् न मर्षयेत् = न सहेत (एतेन गाढा निद्रा व्यज्यते । अत अनुमीयते यत् अय सत्यमेव सुप्त ॥ १२ ॥

जर्जरप्रावरणैकदेशे—जर्जर = जीर्णं प्रावरणम् = आच्छादनवस्त्रं तस्य एक, देश तस्मिन् । दीपप्रभाव्यक्तीकृतरूपम्—दीपस्य प्रभया व्यक्तीकृत रूप यस्य तत् । प्राप्तकाल = अपहरणस्य समुचितसमय ।

मुषित अस्मि=अहम् हृतसुवर्णभाण्ड अस्मि । भीत्या—भयेन उत्पथप्रवृत्त = विमार्गे प्रवृत्त । अर्थात् वाणिज्यमार्गमुल्लङ्घ्य गमनशील इत्यर्थ ।

यह सोने का बहाना कर रहा होता तो सामने दीपक की रोशनी को बर्दाश्त न करता (अर्थात् दीपक की ओर मुह करके न सोता) ॥ १२ ॥

वह (सुवर्णभाण्ड) कहाँ है ? अये ! पुराने वस्त्र के भीतर दीप के प्रकाश में इसका रूप दिखाई पड रहा है । इसने अच्छी तरह पकड लिया है । यही उपयुक्त समय है । मैंने इन शलभों को पकड लिया है । दीपक बुझाने के लिए एक को छोड देता हूँ । (भ्रमर-पेटिका से एक को छोडता है ।) अये ! यह दीप को बुझाकर गिर जाता है (अर्थात् स्वय नष्ट हो जाता है) ।

विदूषक—आह ! खेद की बात है कि इस समय दीपक बुझा दिया गया । [illegible] बर्बाद हो गया । भो ! चारुदत्त ! इस सुवर्णालङ्कार को ग्रहण करो । मुझे

गृहाणेमं सुवर्णालङ्कारम् । अहं खलु मीत्योत्पथप्रवृत्त इव वणिग् निद्रां न लभे । मम ब्राह्मणत्वेन शापितोऽसि यदि न गृह्णासि ।]

सज्जलकः—किमत्र शपथपरिग्रहेण । एष प्रतिगृह्णामि । (गृह्णाति ।)

विदूषकः—(दत्त्वा) अहं विक्किणिदभण्डओ विअ वणिजओ सुहं सइस्सं । [अहं विक्रीतभाण्डक इव वणिक् सुखं शयिष्ये ।]

सज्जलकः—सुखं स्वपिहि महाब्राह्मण ! (विचिन्त्य) भो ! ब्राह्मणेन विश्वासाद् दीयमानं मया हर्तव्यमासीत् ।

धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिर्वेदं च यौवनम् ।
यदिदं दारुणं कर्म निन्दामि च करोमि च ॥ १४ ॥

शपथपरिग्रहेण = शपथस्य परिग्रहेण किं स्यात् इत्यर्थः ।

विक्रीतभाण्डकः—विक्रीतं भाण्डकं येन सः । शयिष्ये = निद्रां लभे ।

धिगिति—दारिद्र्यम् = अकिञ्चनत्वम् धिक्=धिक्कारः अस्तु अनिर्वेदम्—अविद्यमानः निर्वेदः =तृप्तिः यस्मिन् भोगेन अतृप्तम् इत्यर्थः यौवनम्=मम यौवनम् खलु = निश्चयेन (धिगस्तु) यत् = यस्मात् कारणात् (अहम्) इदम् दारुणम् = चौर्यरूपनिन्दितम् कर्म निन्दामि च (तथापि) करोमि च ॥ १४ ॥

इसी प्रकार भय से नींद आ रही जैसे रास्ता भूले हुए व्यापारी को। यदि तुम नहीं लेते हो तो मैं ब्राह्मण के नाते तुम्हें शपथ दे दूँगा ।

सज्जलक—इसमें शपथ लेने की आवश्यकता ही क्या है। मैं इसे ग्रहण करता हूँ। (ग्रहण करता है।)

विदूषक—(देकर) मैं भाण्ड की बिक्री करनेवाले वणिक की भाँति सुख पूर्वक सो रहा हूँ।

सज्जलक—ओ ! महाब्राह्मण ! सुखपूर्वक सोओ ! (चिन्ता करके) ओ ! मैंने चुरा लिया जो ब्राह्मण के विश्वास पर दिया गया था (अर्थात् यह चारुदत्त को दिया जा रहा है उसे मैंने हरण किया)।

मेरी दरिद्रता को धिक्कार है तथा इस यौवन को धिक्कार है जो प्रायश्चित से रहित (अतृप्त) है। क्योंकि मैं बुरे काम की निन्दा भी कर रहा हूँ और फिर भी इसे कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

(नेपथ्ये पटहशब्दः क्रियते ।)

सज्जलक—(कर्णं दत्त्वा) अये प्रभातसमयः संवृत्तः । अपसरामि तावत् ।

(निष्क्रान्तः सज्जलकः ।)

(प्रविश्य)

चेटी—(साक्रन्दम्) अय्यमेत्तेअ ! अम्हाणं रुक्खवाडिआपक्खदुवाले सन्धिं छिन्दिअ चोरो पविट्ठो । [आर्यमैत्रेय ! अस्माकं वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धिं छित्वा चोरः प्रविष्टः ।]

विदूषकः—(सहसोत्थाय) किं भणादि होदी । [किं भणति भवती ।]

(चेटी तदेवत्ति पठति ।)

विदूषक—चोरं छिन्दिअ सन्धी पविट्ठो । [चोरं छित्वा सन्धिः प्रविष्टः ।]

चेटी—हदास ! सन्धिं छिन्दिअ चोरो पविट्ठो । [हताश ! सन्धिं छित्वा चोरः प्रविष्टः ।]

विदूषक—आअच्छ णं दसेहि । [आगच्छ ननु दर्शय ।]

चेटी—(परिक्रम्य) एदं । [एतत् ।]

(नेपथ्य में नगाड़े का शब्द होता है ।)

सज्जलक—(ध्यान देकर) अरे ! सबेरा हो गया । तब मैं भाग जाता हूँ । (सज्जलक निकल जाता है) ।

(प्रवेश कर)

चेटी—(जोर से चिल्लाकर) आर्य मैत्रेय ! मेरी वृक्षवाटिका के पक्ष द्वार में चोर सुरङ्ग बनाकर घुस गया ।

विदूषक—(सहसा उठकर) आप क्या कह रही हैं ?

(चेटी फिर उसी को दुहराती है)

विदूषक—सुरङ्ग बनाकर चोर घुस गया ।

चेटी—हाय ! सुरङ्ग बनाकर चोर घुस गया ।

विदूषक—आइये और मुझे दिखाइये ।

चेटी—(घूमकर) यह है ।

विदूषक—अविहा दासीएवुत्तेण कुक्कुरेण पवेसो किदो । भोदि ! आअच्छ, चारुदत्तस्स पिअ णिवेदेमि । [अविहा दास्या पुत्रेण कुक्कुरेण प्रवेश कृत । भवति ! आगच्छ चारुदत्तस्य प्रिय निवेदयामि ।

(उभावुपगम्य)

भो चारुदत्त ! पिअं दे णिवेदेमि । [भोश्चारुदत्त ! प्रिय ते निवेदयामि ।]

नायक—(बुद्ध्वा) किं मे प्रियम् । ननु वसन्तसेना प्राप्ता ।

विदूषक—ण खु वसन्तसेणा, वसन्तसेणो पत्तो । [न खलु वसन्तसेना वसन्तसेन प्राप्त" ।]

नायक—रदनिके ! किमेतत् ।

चेटी—भट्टिदारअ ! अम्हाण रुक्खवाडिआपक्खदुवारे सन्धि छिन्दिअ चोरो पविट्ठो । [भर्तृदारक ! अस्माक वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धि छित्वा चोर प्रविष्ट ।]

नायक—किं चोर प्रविष्ट ।

विदूषक—भो वअस्स ! सव्वहा तुव भणासि, मुक्खो मेत्तेओ अपण्डिदो मेत्तेओ त्ति । ण मए सोभण किद त [सुवण्णभण्डअ तव हत्थे समप्पअ तेण । [भो वयस्य ! सर्वथा त्व भणसि मूर्खो मैत्रेयोऽपण्डितो मैत्रेय इति । ननु मया शोभन कृत तत् सुवर्णभाण्डक तव हस्ते समर्पयता ।]

विदूषक—आह ! दासीपुत्र कुक्कुर ने प्रवेश किया था । चलो चलें और यह प्रिय सन्देश आप चारुदत्त को निवेदन कर दें । (दोनों समीप जाकर) भो चारुदत्त ! मैं आपसे कुछ प्रिय संदेश निवेदन करना चाहूँगा ।

नायक—(उठकर) मेरे लिए क्या प्रिय संदेश है ? क्या वास्तव में वसन्त सेना आ गई ?

विदूषक—वसन्त सेना नहीं बल्कि वसन्तसेन आया है ।

नायक—रदनिके ! यह क्या है ?

चेटी—महाशय ! मेरी वृक्षवाटिका के पक्षद्वार में चोर सुरङ्ग बनाकर घुस गया ।

नायक—क्या चोर घुस गया ?

विदूषक—ओ मित्र ! आप हमेशा कहा करते थे कि मैत्रेय मूर्ख है अपण्डित है । परन्तु मैंने अच्छा किया कि सुवर्णभाण्ड आपके हाथ में दे दिया ।

नायक —किं भवता दत्तम् ।

विदूषक —अहइं । [अथ किम् ।]

नायक —कस्यां वेलायाम् ।

विदूषक —अद्धरत्ते । [अर्धरात्रे ।]

नायक —किमर्धरात्रे । बाढ दत्तम् ।

विदूषक —भो चारुदत्त ! जं वेलं पडिबुद्धो आसि, तस्सिं वेलाअ खु दिण्णं । [भोश्चारुदत्त ! यस्या वेलाया प्रतिबुद्ध आसी, तस्या वेलाया खलु दत्तम् ।]

नायक —हन्त हृत सुवर्णभाण्डकम् ।

विदूषक —दाणिं मे हत्थे पडिच्छिदु अत्तभवं । [इदानीं मम हस्ते प्रयच्छत्वत्रभवान् ।]

नायक —(आत्मगतम्)

क श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति ।
शङ्कनीया हि दोषेषु निष्प्रभावा दरिद्रता ॥ १५ ॥

क इति—क = लोक भूत = सत्य· अर्थ = चौरकर्तृकस्वर्णभाण्डापहरण रूपा घटना तम् श्रद्धास्यति = विश्वसिष्यति (अपितु) सर्व जन माम् = दरिद्र चारुदत्तम् तुलयिष्यति = शठो वा तस्करो वा इति तुल्या निर्णेष्यति, अर्थात् यथार्थवृत्तान्तेऽविश्वासतया स्वयमेवापहृतमिति अपवादोत्पादनेन तूलवत् लघु करिष्यति इत्याशय । हि = यत मयि दोषे असति अपि दोषेषु = दोषविषयेषु

नायक—क्या आपने दे दिया ?

विदूषक—और क्या ?

नायक— किस समय ?

विदूषक— आधी रात को ।

नायक— क्या आधी रात में ? क्या आपने सचमुच मुझे दे दिया ?

विदूषक—भो चारुदत्त ! जिस समय आप जगे हुए थे, उसी समय दिया था ।

नायक—हाय ! सुवर्णभाण्ड की चोरी हो गई ।

विदूषक—इस समय आप मेरे हाथ में दें ।

नायक—(मन में) इस सही बात का कौन विश्वास करेगा, सब लोग मुझे ही चोर बतायेंगे । मुझमें दोष न होने पर भी प्रभाव मिटानेवाली दरिद्रता के कारण मुझे ही (दोषी) लगाया जायगा ॥ १५ ॥

(प्रविश्य)

ब्राह्मणी—रदणिए ! रदणिए ! आअच्छ। णहि सुणादि। कवाडसद्दाय करिस्स। (तथा करोति।) [रदनिके! रदनिके! आगच्छ। न हि शृणोति। कपाटशब्दं तावत् करिष्यामि।]

चेटी—हं, कवाडसद्दो विअ। भट्टिदारिआ मं सद्दावेदि। (परिक्रम्य) भट्टिदारिए! इअम्हि। [हं कपाटशब्द इव। भर्तृदारिका मां शब्दापयति। भर्तृदारिके! इयमस्मि।]

ब्राह्मणी—ण परिक्खदो ण वावादिदो अय्यउत्तो अय्यमेत्तेओ वा। [न परिक्षतो न व्यापादित आर्यपुत्र आर्यमैत्रेयो वा।]

चेटी—कुसली भट्टिदारओ अय्यमेत्तेओ अ। जो तस्स जणस्स अलङ्कारो चोरेण गहीदो। [कुशली भर्तृदारक आर्यमैत्रेयश्च। यस्तस्य जनस्य अलङ्कारश्चोरेण गृहीतः।]

ब्राह्मणी—किं भणासि चोरेण गहीदो त्ति। [किं भणसि चोरेण गृहीत इति।]

चेटी—अह इ। [अथ किं।]

निष्प्रभावा = निर्गतः प्रभावः यस्याः सा एवम्भूता दरिद्रता = दैन्यम् शङ्कनीया = हसनीया अर्थात् समस्तं शङ्का स्थानम् भवतीति भावः ॥ १५ ॥

(प्रवेश कर)

ब्राह्मणी—रदनिके! रदनिके! आओ। नहीं सुनती है। तब मैं दरवाजा खटखटाऊँगी। (वैसा ही करती है।)

चेटी—यह कपाट के शब्द की तरह (आवाज आ रही है)। भर्तृदारिका मुझको बुला रही हैं? (घूमकर) भर्तृदारिके! मैं यहाँ हूँ।

ब्राह्मणी—आर्यपुत्र अथवा मैत्रेय आहत या मार तो नहीं गए?

चेटी—आर्यपुत्र और मैत्रेय दोनों सकुशल हैं। केवल उनके भूषण चोर चुरा ले गया।

ब्राह्मणी—क्या कह रही है चोर ले गया है?

चेटी—हाँ

ब्राह्मणी—किंणु खु तस्स जणस्स दादव्वं भविस्सदि । अहव एदं दइस्सं । (कर्णौ स्पृष्ट्वा) हद्धि तालीपत्त खु एद । सो दाणिं परिओ म विलम्बेदि । किं दाणिं करिस्सं । (विचिन्त्य) मोदु, दिट्ठं । मम ञ्यादिकुलादो लद्धा सदसहस्समुल्ला मुत्तावली । तं पि अय्यउत्तो सोढीरदाए पडिच्छदि । मोदु, एवं दाव करिस्सं (निष्क्रान्ता) [किन्तु खलु तस्मै जनाय दातव्य भविष्यति । अथवैतद् दास्यामि । हा धिक् तालीपत्र खल्वेतत् । स इदानीं परिचयो मा विडम्बयति । किमिदानीं करिष्यामि । भवतु, दृष्टम् । मम ज्ञातिकुलाद् लब्धा शतसहस्रमूल्या मुक्तावली । तामप्यार्यपुत्र शौटीरतया प्रतीच्छति । भवतु, एव तावत् करिष्यामि ।]

विदूषक—इमस्स अन्धआरुप्पादिदस्स अवराहस्स किदे भवन्तं सीसेण पसादेमि । दाणिं मे हत्थे पडिच्छदु अत्तभव । [अस्यान्धकारोत्पादितस्यापराधस्य कृते भवन्त शीर्षेण प्रसादयामि । इदानीं मे हस्ते प्रयच्छत्वत्रभवान् ।]

नायक—किं भवानिदानीं मा बाधते ।

भवांस्तावदविश्वासी शीलज्ञो मम नित्यश ।

शौटीरतया = अभिमानेन, आभिजात्येन हेतुना वा प्रतीच्छति किम् = ग्रहीष्यति किम् ? इति प्रश्नकाकु अर्थात् खीधनत्वात् = ग्रहीष्यति इति भाव ।

अन्धकारोत्पादितस्य = अन्धकारे उत्पादितस्य इत्यर्थ ।

भवानिति—यदि मम शीलज्ञ —शील स्वभाव जानाति इति शीलज्ञ,

ब्राह्मणी—अब इस वसन्तसेना को क्या दिया जायगा ? अथवा इसको दे दूँगी । (कानों को स्पर्श करके) हाय ! यह तो तालपत्र का कर्णभूषण है । आभूषणों के पुराने परिचय मुझे कष्ट दे रहे हैं । तब मैं इस समय क्या करूँ ? (चिन्ता करके) अच्छा, मैंने उपाय सोच लिया । मुझे अपने सम्बन्धियों से सहस्रमूल्य वाली 'मुक्तावली' मिली है । क्या उसे आर्यपुत्र स्वकुल के अभिमान से चाहेंगे (अर्थात् लेंगे) ? अच्छा, तब ऐसा ही करूँगी । (निकल जाती है ।)

विदूषक—मैंने अँधेरे में आपको अलंकार देकर जो अपराध किया उसके लिए सिर नवाकर आपको प्रसन्न करता हूँ । इस समय आप उसे मेरे हाथ में दें ।

नायक—आप मुझे (इन शब्दों से) क्यों पीड़ित कर रहे हैं ?

आप मेरे दैनिक कर्म एव स्वभाव से सुपरिचित हैं तथापि मेरे ऊपर अविश्वास

किं पुनः स कलाजीवी वञ्चनापण्डिता जनः ॥ १६ ॥

विदूषकः—मण्णे मए मन्दभग्गेण कुम्भीलस्स हत्थे दिण्णं । (विषण्णस्तिष्ठति ।) [मन्ये मया मन्दभाग्येन कुम्भीलस्य हस्ते दत्तम् ।]

(प्रविश्य)

ब्राह्मणी—रदणिए ! अज्जमेत्तेअं सद्दावेहि । [रदनिके ! आर्यमैत्रेयं शब्दापय ।]

चेटी—अज्जमेत्तेअ ! भट्टिदारिआ तुमं सद्दावेदि । [आर्यमैत्रेय ! भर्तृदारिका त्वां शब्दापयति ।]

विदूषकः—भोदि ! किं मं । [भवति ! किं माम् ।]

चेटी—आम् । [आम् ।]

विदूषकः—एसो आअच्छामि । [एष आगच्छामि ।] (उपसर्पति ।)

ब्राह्मणी—अज्जमेत्तेअ ! इमं पडिग्गहं पडिगण्ह । [आर्यमैत्रेय ! इमं प्रतिग्रहं प्रतिगृहाण ।]

निर्धनः = नित्यक्लमः भवान् (मयि) अविश्वासी तावत्, (तदा) कलाजीवी = अभिनयादिकलोपजीवी वञ्चनापण्डितः = परवञ्चनायां पण्डितः = प्रवीणः जनः = वसन्तसेनारूपः वेश्याजनः किं पुनः विश्वासी भवेत् ? न कदाचिदपि मां विश्वसेदिति भावः ॥ १६ ॥

प्रतिग्रहम् = दानम् ।

कर रहे हैं तो अभिनयादि कला की मर्मज्ञ तथा वञ्चना कला में पण्डित वसन्तसेना मेरा कैसे विश्वास करेगी ? ॥ १६ ॥

विदूषक—सच मानता हूँ कि मुझ अभागे ने उसे चोर के हाथ में दे दिया । (दुःखी होकर बैठ जाता है ।)

(प्रवेश कर)

ब्राह्मणी—रदनिके ! आर्य मैत्रेय को बुलाओ ।

चेटी—आर्यमैत्रेय ! भर्तृदारिका आपको बुला रही हैं ।

विदूषक—ओ माननीया क्या मुझको बुला रही हैं ?

चेटी—हाँ ।

विदूषक—यह मैं आता हूँ । (समीप जाता है ।)

ब्राह्मणी—आर्यमैत्रेय ! यह दान ग्रहण करें ।

विदूषक—अवस्थाविरुद्धो खु अज्जं पदाणविभवो । कुदो एदस्स आगमो । [अवस्थाविरुद्ध खल्वय प्रदानविभव । कुत एतस्यागम ।]

ब्राह्मणी—ण सट्ठिं उववसामि । सव्वसारविभवेण बम्हणेण सोत्थि वाअइदव्व त्ति एसो इमस्स आगमो । [ननु षष्ठीमुपवसामि । सर्वसारविभवेन ब्राह्मणेन स्वस्ति वाचयितव्यमित्येषोऽस्यागम ।]

विदूषक—अट्ठमी खु अज्ज । [अष्टमी खल्वद्य ।]

ब्राह्मणी—पमादादो अदिक्कमो किदो । अज्ज पूआ णिव्वत्तीअदि । [प्रमादात् अतिक्रम कृत । अद्य पूजा निर्वर्त्यते ।]

विदूषक—अणणुरूवदाए पदाणस्स अणुक्कोसो विअ पडिभादि । (जनान्तिकम्) रदणिए ! किं करिस्सं । [अननुरूपतया प्रदानस्यानुक्रोश इव प्रतिभाति । रदनिके ! किं करिष्यामि ।]

चेटी—(अपवार्य) किणु खु तस्स जणस्स दादव्व भविस्सदि त्ति

प्रदानविभव = प्रदानस्य विभव = सपत तथा ।

सर्वसारविभवेन सर्वदा सार एवभूत विभव तेन ।

जनान्तिकम्—जनान्ते = पात्रगणमध्ये यदन्योन्यामन्त्रण परस्परमालापस्तज्जनान्तिक भवति, यथोक्त दर्पणे-'अन्योन्यामन्त्रण यत् स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्' इति अननुरूपतया = प्रदानस्य अवस्थाविरुद्धतया इत्यर्थ । अनुक्रोश = दया ।

विदूषक—दान की यह सपत्ति इस अवस्था के अनुकूल नहीं है । यह कहा से मिली है ?

ब्राह्मणी—मैं षष्ठी के दिन उपवास रहती हूँ । ऐसी परिस्थिति में मैं अपने सर्वश्रेष्ठ विभव के द्वारा ब्राह्मण से स्वस्ति पाठ कराना चाहती हूँ । यही इस (उपहार) का कारण है ।

विदूषक—आज तो अष्टमी है ।

ब्राह्मणी—प्रमाद के कारण दिन का ध्यान नहीं रहा हो । आज पूजा करनी है ।

विदूषक—अवस्था विरुद्ध होने के कारण यह दान दया की भांति मालूम हो रहा है । (जनान्तिक में) रदनिके ! क्या करूँ ?

चेटी—(सबको न सुनाकर) वसन्तसेना को क्या दूँगा—इसी निमित्त मे

ण्णिमित्त भट्टिदारओ सन्तप्पदि त्ति भट्टिदारिआ तव हत्थे दइअ अप्पउत्त अणिरिण करिस्सामि त्ति एव करेदि। ता गण्हदु। [किन्तु खलु तस्मै कनाय दातव्य भविष्यतीत्यतन्निमित्त भर्तृदारक सतप्यत इति भर्तृदारिका तव हस्ते दत्त्वाऽऽत्मपुत्रमनृण करिष्यामीत्येव करोति। तद् गृहाणतत्।]

ब्राह्मणी—उदअसम्भवदाए मुत्तावलीए तव अणुरूवदाए उवआरो विस्सरिदो। गण्हदु एद। (ददाति।) [उदकसम्भवतया मुक्तावल्यास्तव च अनुरूपतयोपचारो विस्मृत। गृहाणैतत्।]

विदूषक—(गृहीत्वा) सव्व दाव चिट्ठदु। रोदिदी विअ होदीए दिट्ठी। [सर्वं तावत् तिष्ठतु। रोदितीव भवत्या दृष्टि।]

ब्राह्मणी—देवउलधूमेण रोदाविदा। [देवकुलधूमेन रोदिता।]

विदूषक—साविदासि तत्तहोदा चारुदत्तेण, जइ अलिअ भणासि। [शापितासि तत्रभवता चारुदत्तेन यद्यलीक भणसि।]

अनृणम् = ऋणरहितम् इत्यर्थः।

उदकसम्भवतया—उदकात् = सलिलात् सम्भव = उत्पत्तिर्यस्या सा तस्या भाव तया।

देवकुलधूमेन—देवकुलस्य = मन्दिरस्य धूमेन अह रोदिता इति भाव।

स्वामी सन्तप्त हो रहे हैं इसीलिए भर्तृदारिका आपके हाथ में यह (मुक्तावली) देकर स्वामी को ऋणमुक्त करना चाहती हैं। अत आप इसे ले लें।

ब्राह्मणी—मुक्तावली की उत्पत्ति जल से हुई तिस पर भी आपके दर्शन उचित समय पर न हो सके। इसलिये हम भेंट द्वारा आपका सत्कार करना भूल गई थी। इसे ग्रहण करें। (दे देती है।)

विदूषक—(ग्रहण करके) ये सब रहने दीजिए। आपकी आँखें मानो रो रही हों।

ब्राह्मणी—देव-मन्दिर का धुँआ मुझे रुला रहा है।

विदूषक—आप चारुदत्त के नाम की शपथ है यदि आप झूठ बोलेंगी।

ब्राह्मणी—हद्धि ! (निष्क्रान्ता ।) [हा धिक् ।]

विदूषक—एसा वाआए दुक्खं रक्खिअ अस्सूहिं सूइअ गआ। (उपगम्य) भो ! इदं । [एषा वाचा दुःखं रक्षित्वाऽश्रुभिः सूचयित्वा गता। भो ! इदम् ।]

नायक—किमेतत् ।

विदूषक—सरिसकुलदारसङ्गहस्स फलं । [सदृशकुलदारसंग्रहस्य फलम् ।]

नायक—किं ब्राह्मणी मामनुकम्पते ।

विदूषक—एवं विअ । [एवमिव ।]

नायक—धिगात्मानम् । अद्य हतोऽस्मि ।

मयि द्रव्यक्षयक्षीणे स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः ।

सदृशकुलदारसंग्रहस्य—सदृशम् = समानं योग्यं वा कुलम् इति सदृशकुलम् दाराणां = स्त्रीणां संग्रहः इति दारसंग्रहः सदृशकुलात् दारसंग्रहः इति सदृशकुलदारसंग्रहः तस्य ।

मयि इति—मयि द्रव्यक्षयक्षीणे—द्रव्यक्षयेण = धननाशेन क्षीणः = दुर्बलः एवंभूते सति स्त्रीद्रव्येण = स्वकीयभार्यायाः मुक्तावलीरूपद्रव्येण = धनेन अनुकम्पितः = यथाकाले साहाय्यप्रदानेन दयाविषयीकृतः । पुरुषः = पौरुषगुणाश्रयः

ब्राह्मणी—हा धिक् ! (निकल जाती है ।)

विदूषक—इस वाक्य से दुःख का संवरण करके और आँसुओं द्वारा सूचन देकर चली गई ।

(नायक के समीप जाकर) भो ! यह देखिये ।

नायक—यह क्या है ?

विदूषक—उपयुक्त कुल की पत्नी मिलने का यह फल है ।

नायक—क्या ब्राह्मणी ने मेरे ऊपर दया की है ?

विदूषक—ऐसा ही है ।

नायक—मुझे धिक्कार है । आज मर गया ।

मैं धन के नाश होने से दुर्बल दशा में स्त्रीरूप द्रव्य से अनुकम्पित हुआ हूँ ।

अर्थतः पुरुषो नारी या नारी साऽर्थतः पुमान्॥१७॥

विदूषक—तत्तहोदी हिअएण तुमं याचेदि। अहं सीसेण याचेमि। ण्ह एदं। [तत्रभवती हृदयेन त्वां याचते। अहं शीर्षेण याचे। गृहाणैतत्।]

नायक—तथा। (गृहीत्वा) वयस्य! इमां मुक्तावलीं गृहीत्वा मन्तसेनायाः सकाशं गच्छ।

अर्थेषु काममुपलभ्य मनोरथो मे
क्षीणो धनेष्वनुचितं प्रणयं करोति।
माने च कार्यकरणे च विलम्ब्यमानो
धिग् भोः! कुलं च पुरुषस्य दरिद्रता च॥१८॥

विदूषक—अहो अप्पमुल्लस्स सुवण्णभण्डअस्स किदे सदसहस्स

अर्थतः = वस्तुतः नारीकार्यकरणात् सम्पद्यते। एवं या नारी स्त्रीधर्मिणी नारी सा अर्थतः = कर्मतः पुमान् = पुरुषसदृशी कार्यकाले पुरुषवत् कार्यकरणात्॥१७॥

अर्थेषु इति—मे = मम मनोरथः अर्थेषु = धनविषयेषु कामम् = यथेष्टम् सन्तुष्टिम् इत्यर्थः उपलभ्य = प्राप्य अधुना माने = स्वकीयमानरक्षणे च कर्तव्य करणे = न्यासप्रत्यर्पणरूपकर्तव्यकरणे विलम्ब्यमानः सन् = कालक्षेपं कुर्वन् क्षीणो धनेषु अनुचितम् = अयोग्यम् प्रणयम् = कामनाम् करोति = दर्शयति इति आशयः। अतः पुरुषस्य कुलम् = उच्चकुलं दरिद्रता च धिक्॥१८॥

सचमुच वहाँ पुरुष नारीतुल्य हो गया और नारी वास्तव में पुरुष हो गई॥१७॥

विदूषक—माननीया ब्राह्मणी हृदय से आपको चाहती है और मैं नत मस्तक द्वारा। अतः इसे आप ग्रहण करें।

नायक—ऐसा ही हो। (ग्रहण कर) मित्र! इस मुक्तावली को लेकर वसन्तसेना के पास जाओ।

धन के विषय में मेरा मनोरथ अत्यन्त तृप्ति को पाकर इस समय (स्वकीय) मानरक्षा करने में और कर्तव्य (न्यास प्रत्यर्पण रूप) कार्य को करने में विलम्ब होता हुआ क्षीण होकर स्त्रियों के धन में अनुचित अनुराग दिखा रहा है। अतः इस मर्यादा से बद्ध उच्चकुल तथा दरिद्रता (दोनों) को धिक्कार है॥१८॥

विदूषक—अहो! अल्पमूल्यवाले सुवर्णभाण्ड के लिए शत सहस्र (एक लाख)

मुल्ला मुत्तावली णीआदइदव्वा । [अहो अल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डस्य कृते शतसहस्रमूल्या मुक्तावली निर्यातयितव्या ।]

नायक :—वयस्य ! मा मैवम् ।

यं समालक्ष्य विश्वासं न्यासोऽस्मासु कृतस्तया ।
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्य प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

तृतीयोऽङ्कः ।

यमिति—तया = वसन्तसेनया यम् = दृढम् विश्वासम् = प्रत्ययम् समालक्ष्य = मनसि उद्भाव्य, उद्दिश्य वा अस्मासु = धनहीनजनेषु न्यासः = स्वर्णभाण्डनिक्षेपः कृतः । तस्य = पूर्वोक्तस्य महतः = प्रधानभूतस्य प्रत्ययस्य = विश्वासस्य मूल्यम् = मूल्यस्वरूपम् एतत् = मुक्तावलीरूपम् द्रव्यम् प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ।

मूल्यवाली यह मुक्तावली क्यों दी जानी चाहिये ?

नायक—मित्र ! ऐसी बात मत कहो ।

जिस विश्वास के ऊपर उसने (वसन्तसेना) मेरे पास धरोहर रक्खी, उस महान् विश्वास का मूल्यस्वरूप यह 'मुक्तावली' तुम उसे दो ॥ १९ ॥

(सबके सब चले जाते हैं ।)

॥ तीसरा अङ्क समाप्त ॥

चेटी—किं एद वेसवासजणो सव्वो दक्खिणो होइ त्ति । पेक्खदु अज्जुआ, चम्पआरामे पिचुमन्दा जाअन्ति । अदिसरिस त्ति मम हिअअं अहिरमदि । परमत्थदो एव्व पसंसीअदि, णं कामदेवो । [किमेतद् वेशवासजन सर्वो दक्षिणो भवतीति । पश्यत्वज्जुका, चम्पकारामे पिचुमन्दा जायन्ते । अतिसदृश इति मम हृदयमभिरमते । परमार्थत एव प्रशस्यते, ननु कामदेव ।]

गणिका—हञ्जे ! सहीजणेण अवहसणीअत्तण अत्तणो परिहरामि । [हञ्जे ! सखीजनेनापहसनीयत्वमात्मन परिहरामि ।]

चेटी—एद जुज्जइ । सहीजणसपत्तिओ गणिआजणो णाम । [एतद् युज्यते सखीजनसपत्नीको गणिकाजनो नाम ।]

(तत प्रविशत्याभरणहस्ताऽपरा चेटी ।)

चेटी—सुह अज्जुआए । [सुखमज्जुकाया ।]

प्रवादं, पूरयन्ती = सार्थकं कुर्वती, त्वम् , अलीक = मिथ्या ('अलीक त्वप्रियेऽनृते' इत्यमर) भणसि ।

चम्पकारामे = चम्पकोद्याने । पिचुमन्दा = निम्बवृक्षा इत्यर्थ ।

अपहसनीयत्वम् = उपहास्यत्वम् ।

सखीजनसपत्नीक —समान पतिर्यस्या इति सपत्नी, सखीजन सपत्नी यस्य स ।

चेटी—क्या सब वेश्याएँ दक्ष हुआ करती हैं ? आर्याजी, देखिये । चम्पकोद्यान में निम्बवृक्ष भी उत्पन्न हो गये हैं । यह चित्रगत व्यक्ति उसके (चारुदत्त के अत्यन्त अनुरूप है । एतदर्थं इस चित्र से मुझे बड़ा आनन्द मिल रहा है अर्थात् मेरा मन इसमें रम रहा है । वास्तव में मैं इसकी प्रशंसा करती हूँ । सचमुच में इसका रूप प्रशंसा के योग्य है, लगता है जैसे कामदेव ही हो ।

गणिका—अरी ! मैं सखीजनों के द्वारा अपना उपहास नहीं चाहती ।

चेटी—ठीक कह रही है । सखीजन तो गणिकाजन के सपत्नी स्वरूप ही हैं ।

(इसके बाद आभरण हाथ में लिए हुए दूसरी दासी का प्रवेश ।)

चेटी—श्रीमतीजी, (वसन्तसेने !) आप कुशल से तो हैं ?

गणिका—हञ्जे ! साअदं दे । [हञ्जे ! स्वागतं ते ।]

चेटी—अज्जुए ! अत्ता आणवेदि—इदं दुआरं पविट्ठं पोक्खरउवावत्तिदं पहवणं। ता तुवरमाणमण्डणा गहीदावउण्ठणा आअच्छदु त्ति । इह अलङ्कार अलङ्करेदु अज्जुआ। [अज्जुके ! अम्बाऽऽज्ञापयति—इद द्वारं प्रविष्टं पौष्करमुपावर्तितं प्रवहणम् । तत् त्वरमाणमण्डना गृहीतावगुण्ठनाऽऽगच्छतिति । इहालङ्कारमलङ्करोत्वज्जुका ।] पुष्करन-कमल-कल्पित।

गणिका—किं अय्यचारुदत्तो मण्डइस्सिदि । [किमार्यचारुदत्तो मण्ड यिष्यति ।]

चेटी—णहिं, जेण अलङ्कारो पेसिओ सो राअसालो सण्ठाणो। [न हि यमालङ्कार प्रेषित स राजस्याल सस्थान ।]

गणिका—अवेहि अविणीदे ! । [अपेह्यविनीते ।] दरजा

पौष्करम् = पद्माकरसन्निवेशम् इति भाव । उपावर्तितम् = आगतम् सुसज्जितम् वा प्रवहणम् = गोशकटम् श्रीजनोचितगोयानम् इत्यर्थ । त्वरमाण मण्डना—त्वरमाण मण्डन यस्या सा । गृहीतावगुण्ठना—गृहीतम् = धृतम् अव गुण्ठम = वाह्यावरणम् यया सा ।

सस्थान = (कामवासनाविशेषे) स्थीयतेऽस्मिन् इति अधिकरणे ल्युट सस्थानमस्त्यस्मिन्निति अर्शआदित्वादच सस्थान एव नामक ।

अपेहि = दूरमपसर इति भाव । कुत्सित सस्थान सस्थानक (कुत्सार्थे कप्रत्यय) राज स्याल इति भाव ।

गणिका—अरी ! तुम्हारा स्वागत हो ।

चेटी—माननीये अम्मा आज्ञा दे रही हैं कि तुम्हारे द्वार पर कमलध्वज से अंकित प्रवहण (=बैलगाड़ी) आया हुआ है । अतः आपको शीघ्र ही अलकृत हो जाना चाहिए और घूंघट करके इस पर (सवार होकर) चला जाना चाहिए । य रहे अलकार आप इन्हें धारण कर लें ।

गणिका—क्या आय चारुदत्त मुझे अलंकृत करेंगे ?

चेटी—नहीं जिसने अलकार भेजा है वह राजा का साला सस्थान है ।

गणिका—ओ अविनीत ! दूर हटो !

चेटी—पसीददु पसीददु अज्जुआ । सन्देसं खु अहं मन्तेमि । (पादयो पतति ।) [प्रसीदतु प्रसीदत्वज्जुका । सन्देशं खल्वहं मन्त्रये ।]

गणिका—उट्ठेहि उट्ठेहि । कुसन्देसं असूआमि, ण तुवं । [उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । कुसन्देशमसूयामि, न त्वाम् ।]

चेटी—किं अहं अत्तं भणामि । [किमहमम्बां भणामि ।]

गणिका—भणेहि अत्तं—जदा अय्यचारुदत्तो अभिसारइदव्वो तदा मण्डेमि त्ति । [भणाम्बाम्—यदाऽऽर्यचारुदत्तोऽभिसारयितव्यस्तदा मण्डयामीति ।]

चेटी—तह । (निष्क्रान्ता ।) [तथा ।]

(ततः प्रविशति सज्जलकः ।)

सज्जलकः—

कृत्वा निशायां वचनीयदोषं निद्रां च हित्वा तिमिरं भयं च ।
स एव सूर्योदयमन्दवीर्यः शनैर्दिवाचन्द्र इवास्मि भीतः ॥ १ ॥

कृत्वेति—निशायाम् = रात्रौ, निद्रां, तिमिरम् = अन्धकारम्, भयं च, हित्वा = त्यक्त्वा, वचनीयदोषम् = चौर्यरूपदोषम्, कृत्वा स एवाहं, शनैः = मन्दं मन्दमित्यर्थः, सूर्योदयमन्दवीर्यः (सन्)—सूर्यस्य उदयेन मन्दम् = क्षीणम्,

---

चेटी—माननीये, प्रसन्न हों प्रसन्न हों । मैं केवल सन्देश दे रही हूँ । (पैरों पर गिर जाती है) ।

गणिका—उठो, उठो ! मैं सन्देश को ही बुरा भला कह रही हूँ, न कि तुमको ।

चेटी—मैं अम्बा से क्या कहूँगी ?

गणिका—माता से कहो कि जब मैं चारुदत्त के पास जाऊँगी उस समय अपने आपको अलङ्कृत करूँगी ।

चेटी—अच्छी बात है । (निकल जाती है ।)

(तब सज्जलक का प्रवेश ।)

सज्जलक—रात्रि में निद्रा, अन्धकार और भय को छोड़कर तथा चौर्यरूप दोष करके वही मैं इस समय सूर्योदय के कारण शनैः शनैः मन्दकान्ति वाले दिन के चन्द्रमा की भाँति भयभीत हो रहा हूँ (दिन में चोर गण निस्तेज एवं असहाय हो जाते हैं) ॥ १ ॥

दिष्ट्या कर्मान्ते प्रभातम् । यावदिदानीं वसन्तसेनाया परिचारिकाया मदनिकाया निष्क्रयाय मयेदं कृतम् । (परिक्रम्य) इदं वसन्तसेनाया गृहम् । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) किन्नु खल्वभ्यन्तरस्था मदनिका । अथवा, पूर्वाह्ने गणिकानामभ्यन्तरे सान्निध्यम् । अतस्तत्रैव तया भवितव्यम् । यावच्छब्दापयामि । मदनिके ! मदनिके ! ।

चेटी—(आकर्ण्य) सज्जलअस्स विअ सरो । वावुदा अज्जुआ । ता उवसप्पिस्स । (उपगम्य) इअम्हि । [सज्जलकस्येव स्वरः । व्यापृताऽज्जुका । तदुपसर्पिष्यामि । इयमस्मि ।]

सज्जलकः—इतस्तावत् ।

चेटी—किं तुमं सङ्किदवण्णो विअ । [किं त्वं शङ्कितवर्ण इव ।]

तुल्यम् वा वीर्यम् = पराक्रमम् सामर्थ्यम् यस्य सः । दिवाचन्द्र = दिवाकालीनः चन्द्र इव भीत अस्मि ॥ १ ॥

दिष्ट्या भाग्यक्रमेण सौभाग्येन इत्यर्थः । कर्मान्ते = मम चौर्यरूपकर्मसमाप्तौ सत्यां प्रभातम् जातम् इत्यर्थः । निष्क्रयायम्—निष्क्रयाय इदम् इति निष्क्रयायम् = दासीत्वबन्धनान्मोचयितुमिति भावः । (Deliverauce By paying money ransom) पूर्वाह्णे—पूर्वम् अहः इति पूर्वाह्णः तस्मिन् ।

व्यापृता = कार्ये व्यस्ता इत्यर्थः ।

शङ्कितवर्ण इव—शङ्कितः वर्णः = आकृतिः यस्य सः तद्वदिति भावः ।

सौभाग्यवश चौर्य कर्म के समाप्त होते ही सवेरा हो गया । इस समय वसन्तसेना की परिचारिका मदनिका जिसको मैं प्यार करता हूँ के उद्धार के लिये (अर्थात् गुलामी के बन्धन से छुड़ाने के लिये) यह कार्य मैंने किया है । (घूम करके) यह वसन्तसेना का घर है । तब प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश कर) क्या मदनिका अन्दर है ? अथवा पूर्वाह्न (= दिन के पहला पहर) में (वह) गणिकाओं के पास ही रहती है । अतः वह वहीं होगी । तब उसे बुलाता हूँ । मदनिके ! मदनिके !

चेटी—(सुनकर) सज्जलक की सी आवाज है । आर्या तो अन्य कार्य में व्यस्त हैं । तब मैं ही जाऊँगी । (समीप आकर) मैं यहाँ हूँ ।

सज्जलक—इधर आओ ।

चेटी—क्यों तुम शंकित की भाँति दीख रहे हो ।

चेटी—पसीदद्‌ पसीदद्‌ अज्जुआ । सन्देसं खु अहं मन्तेमि । (पादयो पतति ।) [प्रसीदतु प्रसीदत्वज्जुका । सन्देशं खल्वहं मन्त्रये ।]

गणिका—उट्ठेहि उट्ठेहि । कुसन्देसं असूआमि, ण तुवं । [उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । कुसन्देशमसूयामि, न त्वाम् ।]

चेटी—किं अहं अत्त भणामि । [किमहमम्बा भणामि ।]

गणिका—भणेहि अत्त—जदा अय्यचारुदत्तो अभिसारइदव्वो तदा मण्डेमि त्ति । [भणाम्बा—यदाऽऽर्यचारुदत्तोऽभिसारयितव्यस्तदा मण्डयामीति ।]

चेटी—तह । (निष्क्रान्ता ।) [तथा ।]

(ततः प्रविशति सज्जलकः ।)

सज्जलकः—

कृत्वा निशायां वचनीयदोषं निद्रां च हित्वा तिमिरं भयं च ।
स एव सूर्योदयमन्दवीर्यः शनैर्दिवाचन्द्र इवास्मि भीतः ॥ १ ॥

कृत्वेति—निशायाम् = रात्रौ, निद्रा, तिमिरम् = अन्धकारम्, भयं च, हित्वा = त्यक्त्वा, वचनीयदोषम् = चौर्यरूपदोषम्, कृत्वा स एवाहं, शनैः = मन्दं मन्दमित्यर्थः, सूर्योदयमन्दवीर्यः (सन्)—सूर्यस्य उदयेन मन्दम् = क्षीणम्,

---

चेटी—माननीये, प्रसन्न हों प्रसन्न हों ! मैं केवल सन्देश दे रही हूँ। (पैरों पर गिर जाती है)।

गणिका—उठो, उठो ! मैं सन्देश को ही बुरा भला कह रही हूँ, न कि तुमको।

चेटी—मैं अम्बा से क्या कहूँगी ?

गणिका—माता से कहो कि जब मैं चारुदत्त के पास जाऊँगी उस समय अपने आपको अलङ्कृत करूँगी।

चेटी—अच्छी बात है। (निकल जाती है।)

(तब सज्जलक का प्रवेश।)

सज्जलक—रात्रि में निद्रा, अन्धकार और भय को छोड़कर तथा चौर्यरूप दोष करके वही मैं इस समय सूर्योदय के कारण धीरे धीरे मन्दकान्ति वाले दिन के चन्द्रमा की भाँति भयभीत हो रहा हूँ (दिन में चोर गण निस्तेज एवं असहाय हो जाते हैं) ॥ १ ॥

दिष्ट्या कर्मान्ते प्रभातम् । यावदिदानीं वसन्तसेनाया परिचारिकाया मदनिकाया निष्क्रयाय मयेदं कृतम् । (परिक्रम्य) इदं वसन्तसेनाया गृहम् । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) किन्नु खल्वभ्यन्तरस्था मदनिका । अथवा, पूर्वाह्णे गणिकानामभ्यन्तरे सान्निध्यम् । अतस्तत्रैव तया भवितव्यम् । यावच्छब्दापयामि । मदनिके ! मदनिके ! ।

चेटी—(आकर्ण्य) सज्जलअस्स विअ सरो । वावुदा अज्जुआ । ता उवसप्पिस्सं । (उपगम्य) इअम्हि । [सज्जलकस्येव स्वरः । व्यापृताऽज्जुका । तदुपसर्पिष्यामि । इयमस्मि ।]

सज्जलकः—इतस्तावत् ।

चेटी—किं तुमं सङ्किदवण्णो विअ । [किं त्वं शङ्कितवर्ण इव ।]

सुबलम् वा वीर्यम् = पराक्रमम् सामर्थ्यम् यस्य सः । दिवाचन्द्रः = दिवाकालीन चन्द्र इव भीत आस्मन् ॥ १ ॥

दिष्ट्या भाग्यक्रमेण सौभाग्यत इत्यर्थः । कर्मान्ते = मम चौर्यरूपकर्मसमाप्तौ सत्यां प्रभातम् जातम् इत्यर्थः । निष्क्रयायम्—निष्क्रयाय इदम् इति निष्क्रयायम्= दासीत्वबन्धनामोचयितुमिति भावः । (Deliverance By paying money ransom) पूर्वाह्णे—पूर्वम् अहः इति पूर्वाह्णः तस्मिन् ।

व्यापृता = कार्य व्यस्ता इत्यर्थः ।

शङ्कितवर्ण इव—शङ्कित वर्णः = आकृतिः यस्य सः तद्वदिति भावः ।

सौभाग्यवश चौर्य कर्म के समाप्त होते ही सवेरा हो गया । इस समय वसन्तसेना की परिचारिका मदनिका जिसको मैं प्यार करता हूँ के उद्धार के लिये (अर्थात् गुलामी के बन्धन से छुड़ाने के लिये) यह कार्य मैंने किया है । (घूम करके) यह वसन्तसेना का घर है । तब प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश कर) क्या मदनिका अन्दर है ? अथवा पूर्वाह्ण (= दिन के पहला पहर) में (वह) गणिकाओं के पास ही रहती है । अतः वह वहीं होगी । तब उसे बुलाता हूँ । मदनिके ! मदनिके !

चेटी—(सुनकर) सज्जलक की सी आवाज है । आर्या तो अन्य कार्य में व्यस्त है । तब मैं ही जाऊंगी । (समीप आकर) मैं यहाँ हूँ ।

सज्जलक—इधर यहाँ आओ ।

चेटी—क्यों तुम शंकित की भांति दीख रहे हो ।

सज्जलक —न खलु, किञ्चित् कथयितुकामः ।

गणिका—हञ्जे ! इम चित्तफलअं सअणीए ठावेहि । (विलोक्य) कहिं गआ हदासा । अहव अदूरगआए होदव्वं । जाव ण पेक्खिस्सं (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो इअं सा अदिसिणिद्धाए दिट्ठीए केण वि मणुस्सेण पिवन्ती विअ सह मन्तअन्ती चिट्ठइ । तक्केमि एसो जो कोवि कएण म याचेदि । [हञ्जे ! इदं चित्रफलकं शयनीये स्थापय । कुत्र गता हताशा । अथवा अदूरगतया भवितव्यम् । यावदेनां प्रेक्षिष्ये । अम्मो इयं साऽतिस्निग्धया दृष्ट्या केनापि मनुष्येण पिबन्तीव सह मन्त्रयमाणा तिष्ठति । तर्कयाम्येष य कोऽपि क्रयेण मा याचते ।]

सज्जलक —श्रूयतां रहस्यम् ।

गणिका—अजुत्त पररहस्स सोदुं, अहं गमिस्सं । [अयुक्तं पररहस्यं श्रोतुम् , अहं गमिष्यामि ।]

सज्जलक —अपि वसन्तसेना (इत्यर्धोक्ते) ।

गणिका—अहं अहिइदा एदाअ कहाअ । होदु, सुणिस्सं दाव भवि-

कथयितुकाम —कथयितुं काम = अभिलाषो यस्य स ।

हताशा = हता = विनष्टा आशा यस्या सा । प्रेक्षिष्ये = पश्यामि इत्यर्थ । क्रयेण = मूल्येन ।

सज्जलक—वस्तुत ऐसा नहीं है, मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

गणिका—अरी ! यह चित्रफलक शय्या पर रख दो । (इधर उधर देखकर) यह कम्बख्त कहाँ चली गई । अथवा यहीं कहीं पास में ही है । तब तक इसे देखती हूँ । (घूमकर और देखकर) अरे ! यह तो यहीं स्नेहभरी आँखों से देखती हुई किसी पुरुष से बात कर रही है । मैं अनुमान करती हूँ कि यह मुझे पैसों से खरीदना चाहता है ।

सज्जलक—रहस्य तो सुनो ।

गणिका—दूसरे का रहस्य सुनना असङ्गत है । इसलिये मैं चली जाती हूँ ।

सज्जलक—वसन्तसेना भी होगी (इस प्रकार अधूरा कहने पर)

गणिका—इस बात-चीत से तो मैं भी सम्बन्धित हूँ । अच्छा, मैं भी सुनूँगी

स्सदि। (पुनः प्रतिनिवृत्य स्थिता।) [अहमधिकृता तस्याः कथायाम्। भवतु श्रोष्यामि तावद् भविष्यति।]

सज्जलक—किं न्यास्यति त्वां निष्क्रयेण।

गणिका—सो एव्व एसो। होदु, सुणिस्सं। [स एवैष। भवतु श्रोष्यामि।]

चेटी—सज्जलअ! मम पदाणं पुढमं एव्व अज्जुआए उत्तं। [सज्जलक! मम प्रदानं प्रथममेवार्ज्जुकयोक्तम्।]

सज्जलक—तेन हीममस्यै प्रयच्छ, एवं वक्तव्या च—

अयं तव शरीरस्य प्रमाणादिव निर्मितः।
अप्रकाश्यो ह्यलङ्कारो मत्स्नेहाद् धार्यतामिति॥ २॥

चेटी—पेक्खामि दाव। [पश्यामि तावत्।]

सज्जलकः—गृह्यताम्। (दर्शयति।)

निष्क्रयण = द्रव्यविनिमयन।

अयमिति—अयम् अप्रकाश्यः = चौर्यप्राप्तत्वात्। जनसमीपे प्रकाशयितुम् अयोग्यः गोपनीय इति भावः अलङ्कारः तव = वसन्तसेनायाः शरीरस्य प्रमाणात् इव प्रमाणं कृत्वैवेति भावः (ल्यब्लोपे एषा पञ्चमी बोध्या) निर्मितः = स्वर्णकारेण विनिर्मितः मत्स्नेहात्—मयि स्नेहहेतोः त्वया धार्यताम् = धारणं क्रियताम्, गृह्यताम् इति॥ २॥

(यह वार्तालाप चाहे जिस ढंग की हो) [फिर घूमकर स्थित होती है]।

सज्जलक—क्या (वसन्तसेना) पैसे से तुम्हें देगी?

गणिका—यह तो वही (व्यक्ति) है। अच्छा मैं सुनूंगी।

चेटी—सज्जलक, आर्या मुझे पहले ही देने को कह रक्खा है।

सज्जलक—तब इसे उन्हें दे दो और कहो कि—गुप्त रखने योग्य यह अलङ्कार तुम्हारे शरीर के प्रमाण से ही मानों निर्मित हुआ है। अतः मुझ में प्रेम होने के कारण तुम्हें इसे धारण करना चाहिए॥ २॥

चेटी—तब इसे मैं देखूंगी।

सज्जलक—लो। (अलङ्कार को दिखाता है)।

चेटी—दिट्ठपुरुवो विअ अअं अलङ्कारो। [दृष्टपूर्व इवायमलङ्कारः।]

गणिका—ममकेरओ विअ अअं अलङ्कारो। [मदीय इवायमलङ्कारः।]

चेटी—भणाहि भणाहि। को इमस्स आअमो। [भण भण। कोऽस्यागमः।]

सज्जलकः—त्वत्स्नेहात् साहसं कृतम्।

उभे—हं, साहसिओ। [हं, साहसिक।]

चेटी—(आत्मगतम्) आ, अज्जुआए खु इमस्स आइदी कम्मदारुणदाए उव्वेअणीआ संवुत्ता। (प्रकाशम्) हद्धि मम किदे उभअं संसइदं संवुत्तं—तव सरीरं चारित्तं च। [आ, अज्जुकायाः खल्वस्याकृतिः कर्मदारुणतयोद्वेजनीया संवृत्ता। हा धिक् मम कृते उभयं संशयितं संवृत्तं—तव शरीरं चारित्रं च।]

त्वत्स्नेहात्—तव त्वयि वा स्नेहः=प्रेमानुरागः तस्मात् हेतोः। साहसम्=चौर्यरूपम् इत्यर्थः।

हम् (हुम्) इति स्वीकारार्थकमव्ययम्।

अस्य=सज्जलकस्य आकृतिः=आकारः अज्जुकायाः=गणिकायाः, वसन्तसेनायाः इति भावः (सम्मुखे) कर्मदारुणतया=चौर्यादिक्रूरकर्महेतोः, उद्वेजनीया=उद्वेजयतीत्युद्वेजनीया (कर्तरि अनीयर्) उद्वेगसम्पादिका, क्षोभणीया इति यावत्। संवृत्ता=सञ्जाता। उभयम्=द्वयम्, शरीरं चारित्रमिति उभयं मत्कृते संशयितम्=संशययुक्तम् संवृत्तम्=जातम्।

चेटी—यह (अलंकार) पहले देखा गया हो ऐसा मालूम हो रहा है।

गणिका—यह आभूषण मेरे अलंकार की भाँति प्रतीत हो रहा है।

चेटी—कहो, कहो। यह अलंकार तुम्हें कहाँ से उपलब्ध हुए हैं?

सज्जलक—तुम्हारे स्नेह के कारण ऐसा साहस किया।

दोनों—वाहरे! साहसी।

चेटी—(स्वगत) अहा, इसकी आकृति चौर्यरूप दारुण कर्म करने के कारण माननीया (वसन्तसेना) के समक्ष उद्विग्न-सी हो गई। (प्रकाश रूप में) हाय धिक्! मेरे लिये तुम्हारे शरीर एवं चरित्र दोनों सन्देहयुक्त हो गए।

सज्जलकः—उन्मत्तिके ! साहसे खलु श्रीर्वसति ।

चेटी—अपण्डिदो क्खु सि । को हि णाम जीविदेण सरीरं विक्किणिस्सदि । अह कस्स गेहे इअ विस्सासवञ्चणा किदा । [अपण्डितः खल्वसि । को हि नाम जीवितेन शरीरं विक्रेष्यति । अथ कस्य गृहे इयं विश्वासवञ्चना कृता ।]

सज्जलकः—अद्य प्रभाते मया श्रुतं—श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति सार्थवाहपुत्रश्चारुदत्तो नाम ।

उभे—हुम् ।

सज्जलकः—अयि,

विषादस्रस्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना ।
मृगीव शरविद्धाङ्गी कम्पसे चानुकम्पसे ॥ ३ ॥

श्रेष्ठिचत्वरे—श्रेष्ठिनां—वणिजां चत्वरे = निवासस्थाने (लक्षणया अत्र मर्या बोद्धव्या) । सार्थवाहपुत्रः—वणिक्पुत्रः वैश्यः सार्थवाहो नैगमो वणिजो वणिक् इत्यमरः ।

विषादेति—विषादस्रस्तसर्वाङ्गी—विषादेन = दुःखेन स्रस्तानि = शिथिलीभूतानि सर्वाण्यङ्गानि यस्याः सा सम्भ्रमेण = चञ्चलतया उत्फुल्ले = विकसिते तादृशे लोचने = नयने यस्याः सा शरविद्धाङ्गी—शरेण = बाणेन विद्धम् तादृशम् अङ्गं यस्याः एवम्भूता मृगीव = हरिणीव (भवती) त्वम् कम्पसे = वेपसे (मां) च अनुकम्पसे = दयसे च ॥ ३ ॥

सज्जलक—उन्मत्तिके ! साहस (उद्योग) में ही लक्ष्मी का निवास होता है ।

चेटी—तुम मूर्ख हो । कौन है जो जीते जी अपने शरीर को बेच देगा । विश्वासघात किया है ।

सज्जलक—प्रातःकाल जैसा मैंने सुना कि सेठों के महल्ले में सार्थवाह पुत्र चारुदत्त नामक व्यक्ति रहता है ।

दोनों—हाँ ।

सज्जलक—प्रिये विषाद से त्रस्त चञ्चलता के कारण विकसित नयनों वाली तथा शर (बाण) से विद्ध शरीर वाली मृगी की तरह (भय से) तुम काँप रही हो और दया भी कर रही हो ॥ ३ ॥

चेटी—दिट्ठपुरुव्वो विअ अअं अलङ्कारो । [दृष्टपूर्व इवायमलङ्कार ।]

गणिका—ममकेरओ विअ अअं अलङ्कारो । [मदीय इवायमलङ्कार ।]

चेटी—भणाहि भणाहि । को इमस्स आअमो । [भण भण । कोऽस्यागम ।]

सज्जलक —त्वत्स्नेहात् साहस कृतम् ।

उभे—हं. साहसिओ । [हं, साहसिक ।]

चेटी—(आत्मगतम्) आ अज्जुआए खु इमस्स आइदी कम्मदारुणदाए उव्वेअणीआ संवुत्ता । (प्रकाशम्) हद्धि मम किदे उभअं ससइदं संवुत्तं—तव सरीरं चारित्तं च । [आ, अज्जुकाया खल्वस्याकृति कर्मदारुणतयोद्वेजनीया संवृत्ता । हा धिग् मम कृते उभयं सशयित संवृत्तं—तव शरीरं चारित्रं च ।]

त्वत्स्नेहात्—तव त्वयि वा स्नेह = अनुराग तस्मात् हेतो । साहसम्= चौर्यरूपकर्म् इत्यर्थ ।

हम् (हुम्) इति स्वीकारार्थकमव्ययम् ।

अस्य = सज्जलकस्य आकृति = आकार अज्जुकाया =गणिकाया , वसन्तसेनाया इति भाव (सम्मुखे) कर्मदारुणतया = चौर्यादिक्रूरकर्महेतो , उद्वेजनीया= उद्वेजयतीत्युद्वेजनीया (कर्तरि अनीयर्) उद्वेगसम्पादिका, क्षोभणीया इति यावत् । संवृत्ता=सञ्जाता । उभयम्=द्वयम् , शरीरं चारित्रमिति उभयं मत्कृते संशयितम्= संशययुक्तम् संवृत्तम् = जातम् ।

चेटी—यह (अलंकार) पहले देखा गया हो ऐसा मालूम हो रहा है ।

गणिका—यह आभूषण मेरे अलंकार की भांति प्रतीत हो रहा है ।

चेटी—कहो, कहो । यह अलंकार तुम्हें कहां से उपलब्ध हुए हैं ?

सज्जलक—तुम्हारे स्नेह के कारण ऐसा साहस किया ।

दोनों—वाहरे ! साहसी ।

चेटी—(स्वगत) अहा, इसकी आकृति चौर्यरूप दारुण कर्म करने के कारण माननीया (वसन्तसेना) के समक्ष उद्विग्न-सी हो गई । (प्रकाश रूप में) हाय धिक् ! मेरे लिये तुम्हारे शरीर एवं चरित्र दोनों सन्देहयुक्त हो गए ।

सज्जलकः—उन्मत्तिके ! साहसे खलु श्रीर्वसति ।

चेटी—अपण्डिदो खु सि । को हि णाम जीविदेण सरीरं विक्कीणिस्सदि । अह कस्स गेहं इअ विस्सामपञ्चणा किदा । [अपण्डितः खल्वसि । को हि नाम जीवितेन शरीरं विक्रेष्यति । अथ कस्य गेहं इव विश्रामवञ्चना कृता ।]

सज्जलकः—अद्य प्रभाते मया श्रुतं—श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति सार्थवाहपुत्रश्चारुदत्तो नाम ।

उभे—हुम् ।

सज्जलकः—अयि,

विषादस्रस्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना ।
मृगीव शरविद्धाङ्गी कम्पसे चानुकम्पसे ॥ ३ ॥

श्रेष्ठिचत्वरे—श्रेष्ठिनां—वणिजानां चत्वरे = निवासस्थाने (लक्षणया अयमर्थो बोद्धव्यः) । सार्थवाहपुत्रः—वणिक्पुत्रः वैदेहकः सार्थवाहो नैगमो वणिक् वणिक् इत्यमरः ।

विषादेति—विषादस्रस्तसर्वाङ्गी—विषादेन = दुःखेन स्रस्तानि = शिथिलीभूतानि सर्वाण्यङ्गानि यस्याः सा सम्भ्रमेण = चञ्चलतया उत्फुल्ले = विकसिते तादृशी लोचने = नयने यस्याः सा शरविद्धाङ्गी—शरेण = बाणेन विद्धम् ताडितम् अङ्गं यस्याः एवंभूता मृगीव = हरिणीव (भयात्) त्वम् कम्पसे = वेपसे (मां) च अनुकम्पसे = दयसे च ॥ ३ ॥

सज्जलक—उन्मत्तिके ! साहस (उद्योग) में ही लक्ष्मी का निवास होता है ।

चेटी—तुम मूर्ख हो । कौन है जो जीते जी अपने शरीर को बेच देगा । विश्वासघात किया है ।

सज्जलक—प्रातःकाल जैसा मैंने सुना कि सेठों के महल्ले में सार्थवाह पुत्र चारुदत्त नामक व्यक्ति रहता है ।

दोनों—हाँ ।

सज्जलक—प्रिये विषाद से ग्रस्त चञ्चलता के कारण विस्मित नयनों वाली तथा शर (बाण) से विद्ध शरीर वाली मृगी की तरह (भय से) तुम कांप रही हो और दया भी कर रही हो ॥ ३ ॥

चेटी—सच्चं भणाहि । सत्थवाहकुले साहसं करन्तेण तुए कोवि कुलउत्तो सत्थेण अत्थि परिक्खदो वावादिदो वा । [सत्यं भण । सार्थवाहकुले साहसं कुर्वता त्वया कश्चित् कुलपुत्रः शस्त्रेणास्ति परिक्षतो व्यापादितो वा ।]

गणिका—सुट्ठु, मए वि पुच्छिदव्वं एदाए पुच्छिदं । [सुष्ठु, मयापि प्रष्टव्यमेतया पृष्टम् ।]

सज्जलकः—मदनिके ! एतावत् किं न पर्याप्तं, द्वितीयमप्यकार्यं करिष्यामि । न खल्वत्र शस्त्रेण कश्चित् परिक्षतो व्यापादितो वा ।

चेटी—सज्जलअ ! सच्चं । [सज्जलक ! सत्यम् ।]

सज्जलकः—सत्यम् ।

चेटी—साहु सज्जलअ ! पिअं मे । [साधु सज्जलक ! प्रियं मे ।]

सज्जलकः—किं किं प्रियमित्याह । ईदृशं मदनिके !

स्वस्नेहशृङ्खलया हि करोम्यकार्यं
सन्तुष्टपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूतः ।

एतावत् किं न पर्याप्तम् = अर्थात् मया अपहृतं धनं तव मोचनाय किं न पर्याप्तमस्ति, तदा द्वितीयमपि अकार्यं = शस्त्रेण मारणरूपं कुकर्म अपि करिष्यामि ? कदापि नैव ।

स्वस्नेहेति—सन्तुष्टपूर्वपुरुषे = सन्तुष्टः पूर्वपुरुषः यस्मिन् तथाभूते

चेटी—ठीक २ कहो । वणिक्कुल में साहस करते हुए तुमने किसी कुलपुत्र को शस्त्र के प्रहार से घायल तो नहीं किया है ?

गणिका—अच्छा, मुझे भी यही पूछना था, जो इसने पूछा है ।

सज्जलक—मदनिके ! क्या (तुम्हारी प्रसन्नता के लिये) इतना पर्याप्त नहीं है ? क्या दूसरा अकार्य (शस्त्र से मारण रूप कर्म) भी करूँगा ? मेरे चौर्यरूप कर्म से कोई भी शस्त्र-अस्त्र से घायल नहीं हुआ है ।

चेटी—सज्जलक ! क्या यह सत्य है ?

सज्जलक—बिल्कुल सत्य है ।

चेटी—साधु सज्जलक ! साधु । यह मेरे लिये अच्छा ही हुआ ।

सज्जलक—क्या, क्या 'प्रिय' ऐसा कह रही हो ? क्या ऐसी बात है ?

जिस कुल में पूर्व पुरुष सर्वतोभावेन संतुष्ट थे उसी वंश में उत्पन्न होकर भी तुम्हारे स्नेह के वशीभूत मैं चौर्यादि कुकर्म करता हूँ और काम से अभिभूत अपने

रक्षामि मन्मथगृहीतमिदं शरीरं
मित्रं च मां व्यपदिशस्यपरं च यासि ॥ ४ ॥

चेटी—सज्जलअ ! सुणाहि । अज्जुआए अअं अलङ्कारो । एव्व णिअ । [सज्जलक ! शृणु । आर्यकाया अयमलङ्कारः । एवमिव ।

सज्जलक—एवम् ।

अज्ञानाद् या मया पूर्वं शाखा पत्रैर्वियोजिता ।
छायार्थी ग्रीष्मसन्तप्तस्तामेव पुनराश्रितः ॥ ५ ॥

कुले = वरे प्रसूत = उत्पन्न अपि त्वत्स्नेहबद्धहृदय —तव त्वयि वा स्नेहेन = प्रेम्णा बद्धम् = वशीभूतम् तत् तादृश हृदय – मनो यस्य स हि = निश्चयेन अकार्यम् = चौर्यादिनिन्दित कर्म करोमि । मन्मथगृहीतम्—मन्मथेन = कामवशेन गृहीतम् = अभिभूतम् इद शरीर रक्षामि (परन्तु त्वम्) माम् = सज्जलकम् मित्र = प्रियम् व्यपदिशसि = वाचा व्यवहरसि अपर च । (चारुदत्तम्) यासि = हृदयेन प्रियतमम् अङ्गीकरोषि ॥ ४ ॥

अज्ञानादिति—अज्ञानात् = भ्रमवशात् मया या शाखा पूर्वम् पत्रै = पर्णै वियोजिता = रिक्तीकृता पत्रवियोजनेन रुक्षता गमिता इति भाव अर्थात् तुभ्यं यया वसन्तसेनाया एवायमित्यनभिज्ञोऽहम् अलङ्कारम् अपहृतवान् ग्रीष्मसन्तप्त—ग्रीष्मकालेन पीडित (अत एव) छायार्थी=छायाया पयोत्यकामार्थी (सोऽहम्) तामेव

शरीर की भी रक्षा करता हूँ । सामने तो तुम मुझे मित्र (वल्लभ) कहती हो फिर भी मन से किसी दूसरे (चारुदत्त) के साथ सबध जोड़ती हो ॥ ४ ॥

चेटी—सज्जलक ! सुनो । माननीया (वसन्तसेना) का यह अलङ्कार है । (मानो) यह ऐसी बात है ।

सज्जलक—ऐसा है ।

अज्ञानवश मैने जिस [1]शाखा को पहले पत्रों से रहित किया उसी का ग्रीष्म से सन्तप्त होकर छाया की खोज करते हुए मैंने आश्रय लिया है भावार्थ यह है कि मन्दाग्नि से सन्तप्त होकर मैं जिस वसन्तसेना से मदनिका को मुक्ति दिलाना चाहा उसी वसन्तसेना का मैंने अलङ्कार अपहरण किया ॥ ५ ॥

१ यहाँ पर 'शाखा' शब्द से वसन्तसेना और 'पर्ण' शब्द से धन की तुलना की गई है ।

गणिका—सन्तप्पदि त्ति तक्केमि एदेण अकज्जं किदं ति। [सन्तप्यत इति तर्कयामि एतेनाकार्यं कृतमिति।]

सज्जलकः—मदनिके! एवं गते किं कर्तव्यम्।

चेटी—तहिं एव णिय्यादेहि, णहि मण्डइस्सदि अज्जुआ। [तत्रैव निर्यातय, नहि मण्डयिष्यत्यज्जुका।]

सज्जलकः—अथेदानीं सोऽसमर्पितां चोर इति रक्षिपुरुषैर्ग्राहयिष्यति चेदत्र किं करिष्यामि।

चेटी—मा भाआहि मा भाआहि। कुलउत्तो खु सो गुणाणं परितुस्सदि। [मा बिभीहि मा बिभीहि। कुलपुत्रः खलु स गुणानां परितुष्यति।]

गणिका—साहु भद्दे! अवत्तव्वासि, अलङ्किदा विअ एदेण वअणेण। [साधु भद्रे! अवक्तव्यासि, अलङ्कृतेवैतेन वचनेन।]

सज्जलकः—सर्वथा न शक्नोम्यहं तत्र गन्तुम्।

(शासनाम्) पुनः आश्रित = आश्रितवान्। अर्थात् वसन्तसेनापरिचारिकायां मदनिकायामनुरक्तेन मया न्यासरूपालङ्कारापहरणेन वसन्तसेना वियोजिता इति इतो' इयं सा मम मदनिकां नैव समर्पयिष्यति इति भावः ॥ ४ ॥

सन्तप्यते = सन्तापो भवति। अकार्यम् = असत्कार्यम् इत्यर्थः।

रक्षिपुरुषैः = रक्षिणश्च ते पुरुषाश्च तैः राजपुरुषैः (सिपाही इति भाषायाम्)

गणिका—इसने अपमानित कार्य किया है। इसीलिये पश्चात्ताप कर रहा है ऐसा अनुमान करती हूँ।

सज्जलक—मदनिके! ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिये?

चेटी—इसे वहीं (चारुदत्त के पास) ले जाओ, माननीया (वसन्तसेना) अपने आपको अलंकृत नहीं करेंगी।

सज्जलक—यदि इस समय गुस्से के कारण रक्षित-पुरुष (पुलिस) के द्वारा चोर समझकर मैं पकड़ लिया गया, तब क्या करूंगा?

चेटी—तुम डरो मत। चारुदत्त कुलीन है, अतएव गुणों से सन्तुष्ट होंगे।

गणिका—साधुभद्रे! तुम आलोचना नहीं कर रही हो, बल्कि तुम्हारे वचन से हम दोनों अलंकृत ही हुये हैं।

सज्जलक—मैं सर्वथा वहां (चारुदत्त के पास) जाने में समर्थ नहीं होऊंगा।

चेटी—अअं अण्णो उआओ । [अयमन्य उपायः ।]

गणिका—एदे गुणा वेसवासस्स । [एते गुणा वेशवासस्य ।]

सज्जलकः—कोऽन्य उपायः ।

चेटी—णं तव रूवण्णा अज्जुआ अवि सत्थवाहपुत्तो अ । [ननु तव रूपज्ञाऽज्जुकाऽपि सार्थवाहपुत्रश्च ।]

सज्जलकः—न खलु ।

चेटी—तेण हि इमं णाय अलङ्कारं तस्स सत्थवाहपुत्तस्स वअणादो अज्जुआए णिय्यादेहि । एवं च किदे तुम रक्खिदो, सो अण्णो अ अणिव्विण्णो भविस्सदि । अहं च पीडिदा ण भविस्सं । आदु अज्जुअं च पुणो वञ्चिअ पुणो एव्व दासभावो भव । [तेन हीममलङ्कारं तस्य सार्थवाहपुत्रस्य वचनादज्जुकायै निर्यातय । एवं च कृते त्वं रक्षितः स चाप्यनिर्विण्णो भविष्यति । अहं च पीडिता न भविष्यामि । अथवा अज्जुकां च पुनर्वञ्चयित्वा पुनरेव दासभावो भवेत् ।]

सार्थवाहपुत्र—सार्थवाहस्य = वणिजः पुत्र = चारुदत्त इत्यर्थः तथा अज्जुका च = गणिका वसन्तसेनेति भावः तव रूपज्ञा-रूपम् आकृतिं गुणांश्च जानातीति रूपज्ञा ।

तेन = तेन कारणेन सार्थवाहपुत्रस्य = चारुदत्तस्य वचनात् = वचनमा

चेटी—यह दूसरा उपाय है ।

गणिका—ये वेश्याओं के गुण हैं ।

सज्जलक—दूसरा उपाय क्या है ?

चेटी—निश्चय ही तुम्हारे रूप एवं गुणों को आर्य चारुदत्त और श्रीमती वसन्तसेना भी जानती हैं ।

सज्जलक—नहीं ।

चेटी—इसलिये सार्थवाहपुत्र (चारुदत्त) के वचनों का आश्रय करके आर्या (वसन्तसेना) के लिये इस अलंकार को ले जाओ । इस प्रकार तुम भी बच जाओगे और वह (चारुदत्त) भी अलङ्कारों के खो जाने के [illegible] दुःखी नहीं होगा और मैं भी दुःखी नहीं होऊँगी । यदि ऐसा न किया तो स्वामिनी की वञ्चना करने ... में दासी होना पड़ेगा ।

सज्जलक—मदनिके ! प्रीतोऽस्मि ।

गणिका—भोदु अब्भन्तरं पविसिअ उवविसामि । (तथा करोति ।) [भवत्वभ्यन्तरं प्रविश्योपविशामि ।]

चेटी—सज्जलअ ! आअच्छ, कामदेवउले म पडिवालेहि । अहं ओसरं जाणिअ अज्जुआए णिवेदेमि । [सज्जलक ! आगच्छ, कामदेवकुले मा प्रतिपालय । अहमवसरं ज्ञात्वाऽज्जुकायै निवेदयामि ।]

सज्जलक—बाढम् । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशत्यपरा चेटी ।)

चेटी—सुहं अज्जुआए । एसो सत्थवाहपुत्तस्स सआसादो कोवि बम्हणो आअदो अज्जुअं पेक्खिदुं । [सुखमज्जुकायाः । एष सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात् कश्चिद् ब्राह्मण आगतोऽज्जुकां द्रष्टुम् ।]

गणिका—(सादरम्) गच्छ, सिग्घं पवेसेहि णं । [गच्छ, शीघ्रं प्रवेशयैनम् ।]

चेटी—तह । (उपसृत्य) एदु एदु अय्यो । [तथा । एत्वेत्वार्यः ।]

श्रित्य इति भावः, यवनादिष्वत्र ल्यब्लोपे कर्मणि पञ्चमी । 'अज्जुकायै' इत्यत्र सम्प्रदाने चतुर्थी, निर्यातय = समर्पय, अनिर्विण्ण = प्रसन्न ।

कामदेवकुले—कामस्य=मदनस्य उत्सवाय निर्मिते देवकुले=मन्दिरे इत्याशयः ।

सकाशात् = समीपात् ।

सज्जलक—मदनिके ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ ।

गणिका—अच्छा, भीतर घुसकर बैठ जाती हूँ । (वैसा ही करती है ।)

चेटी—सज्जलक आओ और कामदेव के मन्दिर में मेरी प्रतीक्षा करो । मैं अवसर जानकर आर्या से निवेदन कर दूँगी ।

सज्जलक—बिल्कुल ठीक । (निकल जाता है ।)

(इसके बाद दूसरी दासी का प्रवेश)

चेटी—आर्या का मङ्गल हो । यह ब्राह्मण सार्थवाहपुत्र (चारुदत्त) के यहाँ से आया है, जो आपसे मिलना चाहता है ।

गणिका—(आदर के साथ) जाओ इसे शीघ्र ही अन्दर लाओ ।

चेटी—ऐसा ही हो । (समीप जाकर) आर्य ! आइये ! आइये !

(प्रविश्य)

विदूषक —(सर्वतो विलोक्य) अहो गणिआगाडस्स सस्सिरीअदा । णाणापट्टणसमागमेहिं आअमिएहिं पुत्थआ वाइअन्ति । सजोजअन्ति अ आहारप्पआराणि । वीणा वाईअन्ति । सुवण्णआरा अलङ्कारप्पआराणि आदरेण जोजअन्ति । [अहो गणिकावाटस्य सश्रीकता । नानापट्टणसमागतैरागमिकैः पुस्तकानि वाच्यन्ते । संयोज्यन्ते चाहारप्रकाराः । वीणा वाद्यन्ते । सुवर्णकारा अलङ्कारप्रकारानादरेण योजयन्ति ।]

चेटी—एसा अज्जुआ । उवसप्पदु अय्यो । [एषाज्जुका । उपसर्पत्वार्यः ।] १॥१७॥

विदूषक—(उपगम्य) सोत्थि होदीए । [स्वस्ति भवत्यै ।]

गणिका—साअदं अय्यस्स । हञ्जे ! आसणं अय्यस्स, पादोदअं च । [स्वागतमार्यस्य । हञ्जे ! आसनमार्यस्य पादोदकं च ।]

गणिकावाटस्य = वेश्यागृहस्य सश्रीकता—श्रिया = लक्ष्म्या शोभया वा सह वर्तमानम् इति सश्रीकम्, तस्य भावः सश्रीकता = रमणीयता इति भावः । नानापट्टनसमागतैः—नानाविधानि पट्टनानि = पत्तनानि नगराणि वा तेभ्यः समागताः तैः आगमिकैः आगमं = आगमस्वरूपशास्त्रं ते विदन्ति इति आगमिकाः तैः । अर्थात् निगमागमशास्त्रस्य वेत्तारः पुस्तकानि वाच्यन्ते = पठ्यन्ते इत्यर्थः ।

(प्रवेश कर)

विदूषक—(अपने आप चारों ओर देखकर) अहो ! गणिका के घर का यह आकर्षण एवं सौन्दर्य ! विभिन्न नगरों से आए हुए शास्त्रों के वेत्ता लोग शास्त्रों का पाठ कर रहे हैं । नाना प्रकार के भोजनों का प्रबन्ध किया जा रहा है । वीणा बजाई जा रही है । सुनार ध्यान से नानाविध अलङ्कारों का निर्माण कर रहे हैं ।

चेटी—आर्या यहाँ हैं । आप स्वयं समीप आयें ।

विदूषक—(समीप जाकर) आपका मंगल हो ।

गणिका—आप का स्वागत है । चेटी ! श्रीमान् जी के लिए आसन और पाद्यार्घ्य दो ।

विदूषक—(आत्मगतम्) सव्वं आणेदु वज्जिअ भोअणं । [सर्वमानयतु वर्जयित्वा भोजनम् ।]

चेटी—जं अज्जुआ आणवेदि । (आसन ददाति पादोदक च ।) उवविसदु अय्यो । [यदज्जुकाज्ञापयति । उपविशत्वार्य ।]

विदूषक—(उपविश्य) पडिच्छदु आसणं भोदी । अह किञ्चि भणिदुं आअदो । [प्रतीच्छत्वासन भवती । अह किञ्चिद् भणितुमागत ।]

गणिका—(उपविश्य) अवहिदम्हि । [अवहितास्मि ।]

विदूषक—केत्तिअमत्तं खु तस्स अलङ्कारस्स मुल्लप्पमाणं । [कियन्मात्र खलु तस्यालङ्कारस्य मूल्यप्रमाणम् ।]

गणिका—किणिमित्तं खु अय्यो पुच्छदि । [किन्निमित्त खल्वार्य पृच्छति ।]

विदूषक—सुणादु भोदी । तत्तहोदो चारुदत्तस्स गुणप्पच्चाअणणिमित्तं खु तुए अलङ्कारो तहिं णिक्खित्तो । सो तेण जूदे हारिदो । [शृणोतु भवती । तत्रभवतश्चारुदत्तस्य गुणप्रत्यायननिमित्त खलु त्वयालङ्कारस्तस्मिन् निक्षिप्त । स तेन द्यूते हारित ।]

प्रतीच्छतु = गृह्णातु ।

अवहितास्मि = अवहिता-निविष्टचित्ता, सावधाना अस्मि ।

किं निमित्तम् = केन निमित्तेन इति भाव ।

गुणप्रत्यायननिमित्तम् गुणाना गुणेषु वा प्रत्यायनम् = प्रतीति इति गुण-

---

विदूषक—(स्वगत) के भोजन को छोड़कर और सब कुछ ले आओ ।

चेटी—आर्या की जो आज्ञा । (आसन और पैर धोने का जल देती है) आर्य यहां बैठें ।

विदूषक—आप भी एक आसन पर बैठ जायँ । मैं कुछ कहने के लिए आया हूँ ।

गणिक—(बैठकर) मैं सुन रही हूँ ।

विदूषक—उन अलकारों का कितना मूल्य हो सकता था ।

गणिका—आप किस लिये पूछ रहे हैं ?

विदूषक—आप सुने । समाननीय चारुदत्त के गुणों से प्रभावित होकर आपने उनके पास अपने आभूषणों को धरोहर के रूप में रख दिया था, परन्तु वे उसे जुआ में हार गये ।

गणिका—अय्ये ! जुज्जइ । तदो तदो । [द्यूते । युज्यते । ततस्ततः ।]

विदूषक—तदो तस्स अलङ्कारस्स मुल्लभूदं इमं मुत्तावलिं पडिच्छदु भोदी । [ततस्तस्यालङ्कारस्य मूल्यभूतामिमां मुक्तावलीं प्रतीच्छतु भवती ।]

गणिका—(आत्मगतम्) धिक् खु गणिआभावं । लुद्धत्ति मं तुलअदि । जइ ण पडिच्छेअं, सो एव्व दोसो भविस्सदि । (प्रकाशम्) आणेदु अय्यो । [धिक् खलु गणिकाभावम् । लुब्धेति मां तुलयति । यदि न प्रतीच्छामि स एव दोषो भविष्यति । आनयत्वार्यः ।]

विदूषक—इदं गण्हदु भोदी । [इदं गृह्णातु भवती ।]

गणिका—(गृहीत्वा) पडिच्छिदं तए त्ति अय्यो णिवेदेदु । [प्रतीष्टं तयेत्यार्यो निवेदयतु ।] [illegible]

विदूषक—(आत्मगतम्) कोवि उवआरो वि ण एदाए भणिदो । (प्रकाशम् ।) एवं होदु । (इत्युक्त्वा निष्क्रान्तः ।) [कोऽप्युपचारोऽपि नैतया भणितः । एवं भवतु ।]

प्रत्यायनम् तदेव निमित्तम् यस्मिन् कर्मणि तत् यथा तथा । निक्षिप्त = न्यास रूपेण स्थापित इति भावः । द्यूतें = पाशकीडायाम् हारित = जित ।
तुलयति = तुलया योजयति इति भावः ।
प्रतीष्टम् = स्वीकृतम् इत्यर्थः ।

गणिका—जुआ में ! ठीक है । तब क्या हुआ ?

विदूषक—तब आप उन अलंकारों के मूल्य में इस मुक्तावली को ग्रहण करें ।

गणिका—(स्वगत) इस गणिकावृत्ति को धिक्कार है । जनता तो मुझे लालची कहेगी । यदि न लूंगी तब भी वही अपराध लगेगा । (प्रकाश) अच्छा दीजिये ।

विदूषक—आप इसे ग्रहण करें ।

गणिका—(ग्रहण कर) कृपया आप चारुदत्त से निवेदन कर दीजियेगा कि यह मैंने इच्छापूर्वक स्वीकृत कर लिया है ।

विदूषक—(स्वगत) इसने कुछ उपचार के रूप में भी नहीं कहा । (प्रकाश) ऐसा ही हो । (देकर निकल जाता है ।)

गणिका—साहु चारुदत्त ! साहु । भाअधेअपरिवुत्तदाए दसाए माणावमाणं रक्खिदं । [साधु चारुदत्त ! साधु । भागधेयपरिवृत्तताया दशाया मानावमानं रक्षितम् ।]

(प्रविश्य)

मदनिका—अज्जुए ! सत्थवाहपुत्तस्स सआसादो कोच्चि मणुस्सो आअदो इच्छइ अज्जुअं पेक्खिदुं । [अज्जुके ! सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात् कश्चिद् मनुष्य आगत इच्छत्यज्जुकां द्रष्टुम् ।]

गणिका—किं दिट्ठपुरुवो णवदंसणो वा । [किं दृष्टपूर्वो नवदर्शनो वा ।]

मदनिका—अज्जुए ! णहि, तस्सकेरओ त्ति मे पडिभादि । [अज्जुके ! नहि, तदीय इति मे प्रतिभाति ।]

गणिका—गच्छ, पवेसेहि णं ।] गच्छ, प्रवेशयैनम् ।]

मदनिका—तह । (निष्क्रान्ता ।) [तथा ।]

गणिका—अहो रमणिज्जदा अज्ज दिवसस्स । [अहो रमणीयताऽद्य दिवसस्य ।]

(ततः प्रविशति मदनिका सज्जलकेन सह ।)

भागधेयपरिवृत्ततायाम्—भागधेयस्य परिवृत्तता = प्रतिकूलता यस्याम् तस्याम् तया ।

गणिका—वाह ! चारुदत्त, वाह । भाग्य के विपरीत दशा में भी आपने मानवता की रक्षा की ।

(प्रवेश कर)

मदनिका—आर्ये ! सार्थवाहपुत्र के यहाँ से कोई व्यक्ति आया है और आपसे मिलना चाहता है ।

गणिका—वही है, अर्थात् पहले जो देखा गया था या दूसरा ।

मदनिका—माननीये ! ऐसा लगता है कि वह उसका निजी आदमी नहीं है ।

गणिका—जाओ और उसे अन्दर लाओ ।

मदनिका—ऐसा ही हो । (निकल जाती है ।)

गणिका—अहो ! आज का दिन तो बडा ही मनोरम है ।

(तब सज्जलक के साथ मदनिकाका प्रवेश)

मज्जलकः—कष्टा खल्वात्मशङ्का नाम,

य कश्चिच्चकितगतिर्निरीक्षते मां
सम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति स्थितो वा ।
सर्वांस्तांस्तुलयति दोषतो मनो मे
स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ॥ ६ ॥

मदनिका—एसा अज्जुआ । उवसप्पदु अय्यो । [एषाज्जुका । उपसर्पत्वार्यः ।]

मज्जलकः—(उपसृत्य) सुखं भवत्यै ।

गणिका—साअदं अय्यस्स । हञ्जे ! आसणं देहि अय्यस्स । [स्वागतमार्यस्य । हञ्जे ! आसनं दीयतामार्याय ।]

मज्जलकः—भवतु भवतु । गृहीतमासनम् । त्वरिततरमनुष्ठेयं किञ्चित् कार्यमस्ति ।

आत्मशङ्का आत्मनः शङ्का = भीरुता खलु = निश्चयेन कष्टा नाम = कष्टदायिका एव ।

य कश्चिदिति—य कश्चित् चकितगतिः सन् चकिता = चञ्चला त्रस्ता वा गतिः यस्य स मां निरीक्षते = पश्यति सम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति वा समीपे स्थितो भवति दोषतः = चौर्यदोषहेतोः मे = मम मनः सर्वान् तान् तुलयति अर्थात् मम दोषान् मां ग्रहीतुमागतः इति मनः निर्णयति । हि = यतः मनुष्यः स्वदोषैः = अपराधैः शङ्कितो भवति ॥ ६ ॥

मज्जलक—आत्मशङ्का ही तो कष्ट देनेवाली वस्तु है ।

जो व्यक्ति चकित होकर मुझे देखता है या मेरे समीप खड़ा होता है तो चौर्यरूप अपराध के कारण मेरा मन सबको इस रूप से तोलता है कि कहीं पकड़ने न आ रहा हो । क्योंकि मनुष्य अपने ही दोषों से शङ्कित हुआ करता है ॥

मदनिका—माननीया यहाँ हैं । आप स्वयं समीप में आयें ।

सज्जलक—(समीप आकर) आपका कल्याण हो ।

गणिका—आप का स्वागत है । आर्ये ! श्रीमान् को आसन दो ।

मज्जलक—अच्छा अच्छा । आसन ग्रहण कर लिया परन्तु शीघ्र सम्पादन योग्य कुछ कार्य है ।

गणिका—साहु चारुदत्त ! साहु ! भाअधेअपरिवुत्तदाए दसाए माणावमाणं रक्खिदं । [साधु चारुदत्त ! साधु ! भागधेयपरिवृत्ततायां दशायां मानावमानं रक्षितम् ।]

(प्रविश्य)

मदनिका—अज्जुए ! सत्थवाहपुत्तस्स सआसादो कोच्चि मणुस्सो आअदो इच्छइ अज्जुअं पेक्खिदुं । [अज्जुके ! सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात् कश्चिद् मनुष्य आगत इच्छत्यज्जुकां द्रष्टुम् ।]

गणिका—किं दिट्ठपुरुवो णवदंसणो वा । [किं दृष्टपूर्वो नवदर्शनो वा ।]

मदनिका—अज्जुए ! णहि, तस्सकेरओ त्ति मे पडिभादि । [अज्जुके ! नहि, तदीय इति मे प्रतिभाति ।]

गणिका—गच्छ, पवेसेहि णं ।] गच्छ, प्रवेशयैनम् ।]

मदनिका—तह । (निष्क्रान्ता ।) [तथा ।]

गणिका—अहो रमणिज्जदा अज्ज दिवसस्स । [अहो रमणीयताऽद्य दिवसस्य ।]

(ततः प्रविशति मदनिका सज्जलकेन सह ।)

भागधेयपरिवृत्ततायाम्—भागधेयस्य परिवृत्तता = प्रतिकूलता यस्याम् तस्याम् तथा ।

गणिका—वाह ! चारुदत्त, वाह ! भाग्य के विपरीत दशा में भी आपने मानदशा की रक्षा की ।

(प्रवेश कर)

मदनिका—आर्ये ! सार्थवाहपुत्र के यहाँ से कोई व्यक्ति आया है और आपसे मिलना चाहता है ।

गणिका—वही है, अर्थात् पहले जो देखा गया था या दूसरा ।

मदनिका—माननीये ! ऐसा लगता है कि वह उसका निजी आदमी नहीं है ।

गणिका—जाओ और उसे अन्दर लाओ ।

मदनिका—ऐसा ही हो । (निकल जाती है ।)

गणिका—अहो ! आज का दिन तो बड़ा ही मनोरम है ।

(तब सज्जलक के साथ मदनिकाका प्रवेश)

सज्जलकः—कष्टा खल्वात्मशङ्का नाम,

यः कश्चिच्चकितगतिर्निरीक्षते मां
सम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति स्थितो वा ।
सर्वांस्तांस्तुलयति दोषतो मनो मे
स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ॥ ६ ॥

मदनिका—एसा अज्जुआ । उवसप्पदु अज्जो । [एषाऽज्जुका । उपसर्पत्वार्यः ।]

सज्जलकः—(उपसृत्य) स्वस्ति भवत्यै ।

गणिका—साअदं अज्जस्स । हञ्जे ! आसणं देहि अज्जस्स । [स्वागतमार्यस्य । हञ्जे ! आसनं दीयतामार्याय ।]

सज्जलकः—भवतु भवतु । गृहीतमासनम् । त्वरिततरमनुष्ठेयं किञ्चित् कार्यमस्ति ।

आत्मशङ्का आत्मनः शङ्का = आशङ्का खलु = निश्चयेन कष्टा नाम = कष्टदायिका एव ।

य कश्चिदिति—यः कश्चित् चकितगतिः भयम् चकिता = चञ्चला त्रस्ता वा गतिः यस्य सः मां निरीक्षते = पश्यति सम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति वा समीपे स्थितो भवति दोषतः = चौर्यदोषयुक्तो मे = मम मनः सर्वान् तान् तुलयति अर्थात् मम दोषान् मां गृहीतुमागता इति मनः निर्णयति । हि = यतः मनुष्यः स्वैः दोषैः = अपराधैः शङ्कितो भवति ॥ ६ ॥

सज्जलक—आत्मशंका ही तो कष्ट देनेवाली वस्तु है।

जो व्यक्ति चकित होकर मुझे देखता है या मेरे समीप खड़ा होता है तो चौर्यरूप अपराध के कारण मेरा मन सबको इस रूप में सोचता है कि कहीं पकड़ने न आ रहा हो। क्योंकि मनुष्य अपने ही दोषों से शङ्कित हुआ करता है॥

मदनिका—माननीया यहाँ हैं। आप स्वयं समीप में आयें।

सज्जलक—(समीप जाकर) आपका कल्याण हो।

गणिका—आप का स्वागत है। दासी! श्रीमान् को आसन दो।

सज्जलक—अच्छा अच्छा। आसन ग्रहण कर लिया, परन्तु शीघ्र सम्पादन योग्य कुछ कार्य है।

गणिका—एव्व भणादु अय्यो । [एव, भणत्वार्य ।]

सज्जलक —आर्यचारुदत्तेनास्मि प्रेषित —यस्तावदलङ्कारो मम हस्ते निक्षिप्त , स त्वसम्भोगमलिनतया गृहस्यासान्निध्यात् कौटुम्बिकाना दुरारक्ष । तद् गृह्यताम् इति ।

गणिका—इमं तस्स चारुदत्तस्स देदु अय्यो । [इम तस्मै चारुदत्ताय ददात्वार्य ।]

सज्जलक —भवति ! न खल्वह गच्छामि ।

गणिका—अह जाणामि तस्स गेहे साहसं करिअ आणीदो अअ अलङ्कारो । तस्स गुणाणि अणुकम्पेदु अय्यो । [अह जानामि तस्य गेहे साहस कृत्वानीतोऽयमलङ्कार । तस्य गुणाननुकम्पतामार्य ।]

सज्जलक —(आत्मगतम्) कथं विदितोऽस्म्यनया ।

असम्भोगमलिनतया—न सम्भोग = सस्कार , व्यवहारात् समार्जनादिकम् इत्यर्थ , तेन मलिनं = धूलिधूसरित तस्य भाव तया तथोक्तया । कौटुम्बिकानाम्= परिवाराणाम् असान्निध्यात्—न सान्निध्यम् इति असान्निध्यम् तस्मात् हेतो , अनुपस्थिते इत्यर्थ । दुरारक्ष = दु खेन रक्षितु योग्य इत्यर्थ ।

गणिका—तव आर्य इसे कहें।

सज्जलक—मुझे आर्य चारुदत्त ने भेजा है और यह सन्देश कहलवाया है कि जो अलङ्कार मेरे हाथ में धरोहर रूप में दिया गया था उसकी रक्षा करना कठिन है क्योंकि घर का ठीक से उपयोग न होने के कारण वह टूटी फूटी दशा में है (चोर आसानी से प्रवेश कर सकते हैं) और कुटुम्बी लोग भी पास नहीं रहते (जिनसे चीजों की रक्षा हो पाती)।

गणिका—आर्य इसे चारुदत्त को दे दें।

सज्जलक—माननीये ! मैं नहीं जाऊगा।

गणिका—मैं जानती हूँ कि आर्य उनके घर में चौर्यरूप साहस कार्य करके इस अलकार को लाये हैं। आपको उनके गुणों के साथ सहानुभूति तो दिखानी ही चाहिये।

सज्जलक—(स्वगत) क्या इसने मुझे जान लिया है ?

गणिका—को एत्थ, पवहणं दाव अय्यस्स । [कोऽत्र प्रवहणं तावदार्यस्य ।]

गणिका—णेमिसद्दो विअ सुणीअदि । आअदेण पवहणेण होदव्वं [नेमिशब्द इव श्रूयते । आगतेन प्रवहणेन भवितव्यम् ।]

गणिका—(स्वैराभरणैर्मदनिकामलङ्कृत्य) आरुहदु अय्यो अय्याए सह पवहणं । [आरोहत्वार्य आर्यया सह प्रवहणम् ।]

मदनिका—अज्जुए ! किं एदं । [अज्जुके ! किमेतत् ।]

गणिका—मा खु मा खु एवं मन्तिअ । अय्या खु सि दाणिं संवुत्ता । गण्हदु अय्यो ! । (मदनिकां गृहीत्वा सज्जलकाय प्रयच्छति ।) [मा खलु मा खल्वेवं मन्त्रयित्वा । आर्या खल्वसीदानीं संवृत्ता । गृह्णात्वार्यः ।]

सज्जलकः—(आत्मगतम्) भोः ! कदा खल्वस्याः प्रतिकर्तव्यं भविष्यति । अथवा, शान्तं शान्तं पापम् ।

नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तौ लभते फलम् ।

प्रवहणं तावद् आर्यस्य = आर्यस्य (सम्बन्धे) तावत् प्रवहणम् = शकटम् आनीयताम् इत्यर्थः ।

नेमिशब्द = नेमेः शब्द इत्यर्थः । चक्रधारा प्रधिर्नेमिः इति यादवः ।

नरः इति—प्रत्युपकारार्थी = प्रत्युपकारमर्थयते इति प्रत्युपकारार्थी = उपका

गणिका—यहाँ कोई है ? आय (सज्जलक) के लिए गाड़ी लाए ।

गणिका—नेमी का सा शब्द सुनाई पड़ रहा है । शायद कोई गाड़ी आ रही है ।

गणिका—(अपने अलंकारों से मदनिका को अलंकृत करके) आय (आर्या = मदनिका) के साथ इस गाड़ी पर सवार होइये ।

मदनिका—आर्ये ! यह क्या है ?

गणिका—ऐसी बात मत कहो । तुम इस समय श्रीमती हो गई हो । आय ग्रहण करें ।

(मदनिका को लेकर सज्जलक को देती है ।)

सज्जलक—(स्वगत) ओ ! इसके (वसन्तसेना के) उपकारों का बदला कब चुकाऊँगा । अथवा पाप शान्त हो ।

प्रत्युपकार करनेवाला प्राणी आपत्ति में फल का उपभोग करता है । किन्तु

द्विषतामेव ।ोऽस्तु योऽस्या भवतु तस्य वा ॥ ७ ॥

(तया सह निष्क्रान्त सज्जलक ।)

गणिका—चउरिए ! । [चतुरिके !]

(प्रविश्य)

चेटी—अज्जुए ! इअम्हि । [अज्जुके । इयमस्मि ।]

गणिका—हञ्जे ! पेक्ख जागरन्तीए मए सिविणो दिट्ठो एव्वं । [हञ्जे ! पश्य जाग्रत्या मया स्वप्नो दृष्ट एवम् ।]

चेटी—पिअ मे, अमुदङ्कणाडअ सवुत्तं । [प्रिय मे, अमृताङ्कनाटक सवृत्तम् ।]

गणिका—एहि इम अलङ्कार गण्हिअ अय्यचारुदत्त अभिसरिस्सामो । [एहीममलकार गृहीत्वार्यचारुदत्तमभिसरिष्याव ।]

रिण प्रत्युपकारेच्छु, नर विपत्तौ = आपत्काले, फलम् = प्रत्युपकाररूपफलम्, सुयोगम् वा लभते = प्राप्नोति । परन्तु य = यादृश अस्या = वसन्तसेनाया, अस्य = चारुदत्तस्य वा विपत्काल अस्ति स द्विपताम् एव अस्तु अनयो शत्रूणामेव (शकारादीनाम्) अस्तु मा भवतु = तस्य, तस्या वा मा भवतु इत्यर्थ ॥ ७ ॥

अमृताङ्कनाटकम्—अमृतम् = अमृतवत् सुखप्रद अङ्क यस्मिन नाटके तत्

उसका (चारुदत्त का) और इसका (वसन्त सेना का) जो विपत्ति काल है, वह शत्रु को ही हो ॥ ७ ॥

(मदनिका के साथ सज्जलक का निष्क्रमण)

गणिका—चतुरिके !

(प्रवेश कर)

चेटी—माननीये ! मैं यहा हूँ ।

गणिका—आर्ये ! देखो, जागती हुई मैंने ऐसा स्वप्न देखा है ।

चेटी—प्यारी बात है । बहुत अच्छा । यह मेरे लिए अमृत से भरा नाटक जैसा सिद्ध हुआ ।

गणिका—आओ । अलकार को पहन कर आर्य चारुदत्त के पास अभिसरण करेंगे ।

चेटी—अज्जुए ! तह । एद पुण अभिसारिआसहाअभूद दुद्दिण उण्णमिअं । [अज्जुके ! तथा । एतत् पुनरभिसारिकासहायभूतं दुर्दिन मुन्नमितम् ।]

गणिका—हञ्जे ! मा हु वड्ढावेहि । [हताशे ! मा खलु वर्धय ।]

चेटी—एदु एदु अज्जुआ । [एतु एत्वज्जुका ।]

(निष्क्रान्ते ।)

चतुर्थोऽङ्कः ।

अमृताङ्कम् अमृताङ्कम् तत् नाटकञ्च इति अमृताङ्कनाटक सवृत्तम् = समाप्तम् । एतेन प्रकृतनाटकस्य शुभसमाप्ति अपि सूच्यते ।

अभिसारिका सहायभूतम्—अभिसारिकाया सहायभूतम् = साहाय्यकारकम् दुर्दिनम् = घनान्धकारो वृष्टिर्वा (घनान्धकारे वृष्टौ च दुर्दिन कथ्यते बुधैः इति मिद्धान्त) उन्नमितम् = प्रादुर्भूतमुत्थित वा ।

इति चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।

चेटी—आर्ये ! ऐसा ही हो । तो, फिर अभिसारिकाओं का सहायक यह दुर्दिन (= काले बादल से घिरा हुआ दिन तथा बुरा दिन) उमड़ आया ।

गणिका—अभागिन मेरे काम को अधिक उत्तेजित मत करो ।

चेटी—मालकीये ! आइये, आइये ।

(दोनों निकल जाती हैं ।)

॥ चौथा अङ्क समाप्त ॥

श्लोकानुक्रमणिका